ग्र० इन्द्रसेन शर्मा

लेखक

इन्द्रसेन शर्मा आयुर्वेदालङ्कार

फिरंग रोग

या

आतशक

इन्द्रसेन
आयुर्वेदालंकार

फिरंग रोग

भूमिका लेखक

श्री डा० आशानन्द जी पञ्चरत्न

आयुर्वेदाचार्य, एम. बी. बी. एस. वाइस प्रिन्सिपल
दयानन्द आयुर्वैदिक कालेज, लाहौर

लेखक

डा० इन्द्रसेन शर्मा एम. बी. बी. एस

आयुर्वेदालंकार (गुरुकुल कांगड़ी)
हिन्दी प्रभाकर, B. A. (English).
(एक्स रे, पाश्चात्य चिकित्सा सार इत्यादि पुस्तकों के प्रणेता)

प्रथम संस्करण } सम्वत् १९९४
१००० प्रति } सन् १९३७
{ मूल्य २)

प्रकाशक

डा० इन्द्रसेन एम. बी. बी. एस

विज स्ट्रीट, भेरा

जिला शाहपुर

(पंजाब)

मुद्रक

प० मायाराम लखनपाल

भारती प्रेस

हास्पिटल रोड, लाहौर

भूमिका
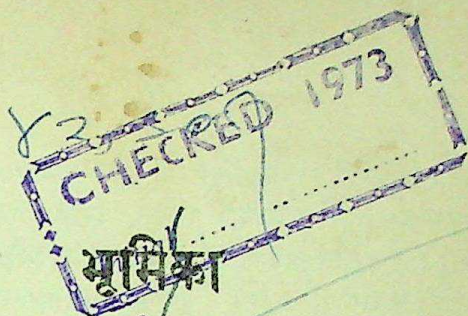
इन दिनों ऐसी पुस्तकों की अत्यन्त आवश्यकता है जो आङ्गल भाषा में वर्णित पाश्चात्य विज्ञान के विषयों को सरल हिन्दी भाषा में वैसे के वैसे अथवा भाव के रूप में प्रस्तुत करें। जिस से आयुर्वेदज्ञ उस विज्ञान से अपने सिद्धान्तों का तुलनात्मक विवेचन करके यह देख सकें कि उनके तथा पाश्चात्य मत में कहा २ समानता और कहाँ २ मतभेद है। ऐसी पुस्तकों का जन्मदाता वह व्यक्ति ही हो सकता है जो दोनों प्राच्य-प्रतीच्य सिद्धान्तों का आचार्य्य हो।

इसी लक्ष्य को समक्ष रख कर प्रस्तुत पुस्तक सिफलिस पर लिखी गई है। जैसा पाश्चात्य पुस्तकों में सिफलिस तथा तज्जन्य उपद्रवों का वर्णन मिलता है वैसा वर्णन आयुर्वेदिक पुस्तकों में कहीं नहीं मिलता है। वस्तुतः यह रोग भारतवर्ष म पश्चिमी लोगों के साथ २ आया है। सर्व प्रथम भावमिश्र ने अपने ग्रन्थ भावप्रकाश में इस रोग का दिग्दर्शन मात्र कराया है। वहाँ वह स्पष्ट लिखता है—

फिरङ्गिनोऽङ्गसंसर्गात्फिरङ्गिण्याः प्रसंगतः ।
व्याधिरागन्तुजोह्येष दोषाणामत्र संक्रमः ॥

अर्थात्—यह व्याधि पश्चिमी स्त्रियों (संर्गसयुक्त रुग्णा) के साथ सम्भोग तथा संसर्ग से उत्पन्न होती है। अतः इसका नाम करण भी भावमिश्र ने फिरङ्गी पुरुषों के नाम पर 'फिरङ्ग

रोग' किया है। भावमिश्र ने उस समय जैसे लक्षण तथा उपद्रव इस व्याधि में देखे उनका वर्णन अपने ग्रन्थ में कर दिया। वे वर्णित लक्षण और उपद्रव सिफलिस के लक्षणों तथा उपद्रवों के सर्वथा समान हैं। जैसे प्रथमावस्था के शिश्नस्थ तथा स्त्री-जननेन्द्रियज व्रणों का उल्लेख करने के अनन्तर, द्वितीयावस्था के स्फुटित व्रण आदियों का भी वर्णन किया है। तत्पश्चात् सन्धिशोथ, नासाभङ्ग, कृशता, बलक्षय, अस्थिशोष आदि तृतीयावस्था के उपद्रवों का भी वर्णन किया गया है।

प्रतीत ऐसा होता है कि भावमिश्र को गनोरिया (भृशोष्णावात) का ज्ञान नहीं था, या यूँ कह सकते हैं कि सम्भवतः उसने आधुनिक गनोरिया का प्राग्वर्णित उष्णवात में अन्तर्भाव किया हो। गनोरिया के कुछ एक उपद्रवों को,यथा:—"सन्धिषु व्यथा आमवातवत्" आदि लक्षणों को उपदंश में ही गिना दिया है। यद्यपि उपदंश में भी इनका सर्वथा अभाव नहीं तथापि वे मुख्यतया भृशोष्णवात (गनोरिया) के ही उपद्रव हैं।

अनेक वार सिफलिस तथा गनोरिया ये दोनों ही, एक ही व्यक्ति में विद्यमान होते हैं। अतः आरम्भ काल में दोनों रोगों के उपद्रवों को पृथक् २ जानना सुगम न था; विशेष कर जब वे दूसरे रोग को पृथक् रूप में समझ भी न पाए थे। भावमिश्र के अतिरिक्त अन्य किसी भी आचार्य ने इन रोगों का वर्णन नहीं किया है।

आज कल के वैद्यों ने अवश्य इस विषय पर बहुत कुछ लिखा है। परन्तु मेरी दृष्टि से इस प्रस्तुत पुस्तक से अधिक विस्तृत सुन्दर और पूर्ण पुस्तक नहीं गुज़री। मुझे

विश्वास है कि ऐसी पुस्तक जिसमें लेखक महोदय ने अपनी ओर से कोई सम्मति नहीं दी और विषय को वैसे का वैसा अक्षत रहने दिया है पाठकों को इस योग्य बना देती है कि वे स्वयं विवेचनात्मक दृष्टि से देखें कि आयुर्वैदिक पुस्तकों में इन रोगों का किन रोगों में अन्तर्भाव है तथा किस सिद्धान्त वा रीति से इनकी चिकित्सा सुचारु रूप से की जा सकती है।

इस पुस्तक में पारिभाषिक शब्दरचना लेखक महोदय ने स्वयं की है तथा कहीं २ पर प्रचलित पारिभाषिक शब्दों से भिन्नता भी दिखाई पड़ती है, ऐसा होना स्वभावतः अनिवार्य्य है। क्योंकि अभी तक हमारा पारिभाषिक शब्दकोष इतना दुर्बल है कि जिसका अनुभव हमें पग पग पर होता है। अतः हम हिन्दी समाज का ध्यान इस ओर अवश्यमेव आकृष्ट करना चाहते हैं। जिससे वह इस क्षति की ओर ध्यान देता हुआ आगामी पुस्तकों के लिए जनता में सौकर्य्य उत्पन्न करे।

इस पुस्तक की भाषा सरल हिन्दुस्तानी भाषा है। यह कृति हिन्दी तथा संस्कृत के जटिल एवं दुरूह शब्दों से मुक्त है। बहुत से महानुभावों की यह दृढ़ धारणा है कि निकट भविष्य में भारतवर्ष में ऐसी ही भाषा प्रचलित हो जायगी। क्योंकि सदैव उस भाषा के साहित्य का ही भविष्य उज्वल होता है जो साधारण जनता तक पहुँच सके। क्लिष्ट साहित्य की सीमा परिमित ही होती है।

मुझे इन बातों को देख कर विश्वास होता है कि यह पुस्तक लोकप्रिय होने के साथ २ सुप्रचलित भी होगी।

लाहौर
१३-७-३७

आशानन्द पञ्चरत्न

सूचना

यह पुस्तक, रावलपिण्डी, भेरा सरगोधा लाहौर, अमृतसर, लुधियाना, हरिद्वार, लखनऊ आदि स्थानों के स्थानिक पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्त हो सकती है। यदि न प्राप्त हो तो मैनेजर फ्रिगन हाउस रावलपिण्डी से मंगाएँ। यदि इस पुस्तक के सम्बन्ध में किसी प्रकार का पत्र व्यवहार करना हो तो लेखक से निम्न पते पर कीजिए :—

डा० इन्द्रसेन

ए० बी० बी० एस०

Vij Street

P. O. BHERA.

District Shahpur, Punjab.

पूर्वकथन

मुझे हिन्दी सेवा की अत्यन्त उत्कण्ठा थी। जिसकी कि प्रथम साक्षी यह पुस्तक है। मेरा क्षेत्र आयुर्वेद का विषय है। इस विषय में भी मैं एक हिस्से की पूर्ति के लिए कटिबद्ध हुआ हूँ। मैंने आयुर्वेद, Allopathy (पाश्चात्यायुर्वेद) संस्कृत भाषा और हिन्दी भाषा का भली प्रकार स्वाध्याय किया है। इस स्वाध्याय के बूते पर मैं ये दावा कर सकता हूँ कि इस पुस्तक जैसी पुस्तकें हिन्दी में तारतम्य से लिखने का मेरा हक है। जिस प्रकार मैंने इन चारों विषयों का अध्ययन किया है, इस तरह किसी किसी सज्जन ने ही किया होगा। ऐसी अवस्था में पाठक गण स्वयं सोच सकते हैं कि इतनी तैयारी के बाद मेरी इस विषय की लिखी हुई पुस्तकों की उपयोगिता कितनी अधिक हो जाती है। अपने स्वाध्याय के विषय में मुझे अपनी लेखनी से कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है।

ये पुस्तक फिरंग रोग पर लिखी गई है। मैंने सब से पहिले फिरंग रोग को इस लिए चुना है क्योंकि यह रोग क्षय (Tuberculosis) के बाद दूसरे नम्बर पर संसार के लिए महा दुःखदायी है इसके विषय में चिकित्सक-संसार को जितना भी ज्ञान हो सो थोड़ा है। ये पुस्तक इस विषय की पूर्णज्ञान पूर्ण (Exhaustive) पुस्तक नहीं है; परन्तु साधारणतः आवश्यक बातों का करीबन सारा ज्ञान इस में इकट्ठा कर दिया है। ये पुस्तक सर्व साधारण (Laity) के लिए नहीं है; अपितु आयुर्वेद के पुजारियों के लिए लिखी गई है। पुस्तक के आरम्भ के कुछ अध्याय तो प्रत्येक युवक पढ़ सकता है और समझ सकता है।

पर इसके बाद के अध्यायों को समझने के लिए सर्व साधारण को इस विषय का थोड़ा बहुत वैज्ञानिक ज्ञान अपेक्षित है।

सो ये पुस्तक मुख्य रूप से आयुर्वेद के विद्यार्थियों और चिकित्सकों के लिए लिखी गई है। विशेषतः उनके लिए जो पाश्चात्य आयुर्वेद (Allopathy) से अभिज्ञ होने के आकांक्षी हों। न ही केवल इससे अभिज्ञ होना चाहते हों पर वाकिफ हो कर उसका फ़ायदा उठाना चाहते हों। मैं Allopathy को आयुर्वेद (Medical Science) का एक हिस्सा मात्र समझता हूँ। इसी प्रकार यूनानी हिकमत को भी आयुर्वेद का हिस्सा समझता हूँ। मेरी समझ में आयुर्वेद विस्तृत विज्ञान है और प्रचलित सब प्रकार की चिकित्सा प्रणालियाँ इस विज्ञान की पूर्ति के लिए प्रयत्न मात्र हैं। कोई प्रयत्न दूसरे प्रयत्न के मुकाबले में कुछ अधिक सफल है, कोई कुछ कम। मेरी समझ में सब, क्या वैद्य, क्या Allopath, और क्या हकीम उसी एक विज्ञान के पुजारी हैं। इन्हें झगड़ना नहीं चाहिए। परन्तु मिलकर उस लक्ष्य की पूर्ति करनी चाहिए। अर्थात् उस महान् आयुर्वेद के विज्ञान की पूर्ति में अग्रेसर होना चाहिए।

देखिए आयुर्वेद शब्द को। इसका स्पष्ट अर्थ है कि आयु अर्थात् उमर का ज्ञान। यह शब्द अपने आप में कितना विस्तृत है! इसे संकुचित नहीं बनाना चाहिए। उदार हृदय होकर प्रत्येक व्यक्ति को आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अर्थात् जहाँ इस विज्ञान की एक शाखा का भली प्रकार पण्डित बनना चाहिए, वहाँ दूसरी शाखाओं के भी ज्ञान के प्राप्त करने में हमेशा प्रयत्नवान रहना चाहिए।

यहाँ पर मैं एक बात जो प्रसंग वश कहनी ज़रूरी मालूम देती है, उसे लिख देता हूँ। कई सज्जन समझते हैं कि "भारतीयायुर्वेद अपने

आप में सर्वांग संपूर्ण है, और इसमें वर्तमान ज्ञान के अतिरिक्त और अधिक ज्ञान समावेश करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

मैं इससे भिन्न मति रखता हूं। पहिला तो मेरा कहना है कि कोई भी विज्ञान सर्वांग सम्पूर्ण नहीं है। पूर्णता परमेश्वर का गुण है। संसार की सभी मनुष्य निर्मित वस्तुएँ और विशेष कर सभी विज्ञान सर्वथा अपूर्ण हैं। इनका पूर्ण करना हमारा कर्तव्य है। पर इनको पूर्ण समझ लेना हमारी मूर्खता है, और ऐसा कह कर खुश होना अपनी मूर्खता में लोट पोट होना है। मैं इस विषय में और अधिक इस जगह पर नहीं लिखना चाहता हूँ। हाँ, एक बात का सांकेतिक उल्लेख अवश्य किए देता हूं। वो यह कि भारतीयायुर्वेद का बहुत सारा हिस्सा कराल काल का कवल भी तो हो चुका है। सो जो व्यक्ति अपने हठ के वश से भारतीयायुर्वेद को सर्वांग-सम्पूर्ण समझने से अपनी अज्ञता या अल्पज्ञता के कारण नहीं टल सकते वो यही समझते रहें कि हमें उस काल-कवलित भाग की पूर्ति अभीष्ट है; और इस समय इसलिए सर्व-सम्मति से वर्तमान समय के अपूर्ण भारतीयायुर्वेद की पूर्णता अभीष्ट है।

इस पुस्तक में मैंने हिन्दी-सेवियों की उस श्रेणी का साथ दिया है, जो यह कहते हैं कि हमें संस्कृत या उर्दू किसी से पक्षपात नहीं है। हम तो अपनी भाषा को, शब्दों का अधिकाधिक धनी बनाते जायेंगे। जहाँ पर उर्दू को अपनाए हुए शब्दों की आवश्यकता होगी उपयोग करेंगे और जहाँ पर संस्कृत के सरल शब्दों की आवश्यकता होगी प्रयुक्त करेंगे। सो मैंने संस्कृत भाषा का पर्याप्त ज्ञान रखते हुए भी जहाँ तक हो सका है संस्कृत भाषा का अपनी भाषा पर बेतुका मुलम्मा नहीं चढ़ाया है। पर सादी और स्पष्ट भाषा को लिखा है।

उर्दू और संस्कृत दोनों के शब्दों का जोड़ तोड़ कर मेल किया है। न संस्कृत का पक्षपाती हो कर भाषा को जटिल या क्लिष्ट किया है। और न उर्दू के शब्दों की भरमार कर के इसे उर्दू ए मुअल्ला का रूप दिया है। आशा है पाठक मेरे मतलब को ठीक ठीक समझ गए होंगे।

पारिभाषिक शब्द— पारिभाषिक शब्दों के लिए हिन्दी भाषा को हमेशा संस्कृत का मुँह देखना पड़ता है। संस्कृत इस कार्य की पूर्ति के लिए अपार शक्ति रखती है। इसकी धातुएँ, किसी भी प्रकार का शब्द चाहो तत्काल उपस्थित कर देती हैं। अंग्रेज़ी को भी इसके लिए लैटिन या ग्रीक प्रभृति भाषाओं का सहारा लेना पड़ता है। पर मैंने जहाँ तक हो सका है पहिले बोल चाल की हिन्दी से ही पारिभाषिक शब्दों की स्थानपूर्ति की है। जहाँ इस तरह के प्रयत्न में सफलता नहीं हुई है वहाँ बग़ैर किसी हिचकिचाहट के सानन्द देव-वाणी का अभिनन्दन किया है। यहाँ पर मैं एक चेतावनी दे देना ज़रूरी समझता हूँ। वह यह कि अभी ऐसी पुस्तकों का प्रारम्भ मात्र है। सो प्रारम्भ में ही बहुत से पारिभाषिक शब्दों की भरमार एक छोटी सी पुस्तक में नहीं की जा सकती है। इनका निर्माण धीरे २ होता है। इसलिए इस पुस्तक में भी बहुत से शब्द जाँच (Trail) के तौर पर परिभाषिक शब्दों की श्रेणी में लिए गए हैं। तात्पर्य यह है कि मेरे, उनके पारिभाषिक शब्दों की तरह लिख देने से, उनका पारि-भाषिक शब्द हो जाने का दावा अभी अधकचरा ही है इसके इलावा कई जगह हमें अंग्रेज़ी भाषा का भी ऋणी होना पड़ेगा। और कई अंग्रेज़ी भाषा के पारिभाषिक शब्दों को भी ज्यों का त्यों लेना पड़ेगा। मुझे इन वाक्यों को विस्तार से समझाने की ज़रूरत नहीं है. जब

पाठक इस पुस्तक को पढ़ेंगे तो खुद ब खुद मेरी सम्मति से अपनी सहमति प्रगट करने लगेंगे। मुझे अभी इस बात को युक्तियों से पुष्ट करना अभीष्ट नहीं है। अगर भविष्य में ऐसा करना आवश्यक हुआ तो अवश्य किया जायगा।

आंगल भाषा का प्रभाव--भाषा-ज्ञान के पण्डितों से ये बात छुपी हुई नहीं है कि राज्य की भाषा का प्रभाव प्रान्त या देश की भाषा पर अवश्य पड़ता है। हम दिन ब दिन लालटैन रेलगाड़ी प्रभृति अनेकों शब्दों को बोल चाल की भाषा में प्रयुक्त करने लग गए हैं। इस कारण स्वाभाविक ही है, कि इस पुस्तक में भी इतनी आंगल भाषा का प्रभाव होवे। परन्तु मेरी क्षमाप्रार्थना (Apology) इस बात के लिए नहीं है। राज्य की भाषा के अतिरिक्त ज्ञान के लेन देन में भी भाषाएँ बड़ा भारी असर डालती हैं जब भारतीयायुर्वेद को यूनानियों ने ग्रहण किया, भारतीयायुर्वेद और संस्कृत का कितना ही प्रभाव यूनानी आयुर्वेद प्रणाली पर पड़ा। इसी प्रकार जब आधुनिक पाश्चात्यायुर्वेद (Allopathy) ने सिर ऊंचा किया तो यूनानी चिकित्सा प्रणाली के प्रभाव से स्वतन्त्र हुए बिना न रह सकी। इसी प्रकार आज हम इस आधुनिक पाश्चात्यायुर्वेद के द्वार पर आदान के लिए (भिक्षा के लिए नहीं, परन्तु अधिकार से अपना हिस्सा लेने के लिए) आए हैं। क्या हम इस प्रभाव से रहित हो कर जा सकते हैं? कदापि नहीं। और क्योंकि इसके द्वार पर खड़े होते हुए हमने इसके अंग्रेज़ी द्वार की शरण ली है सो इसलिए अंग्रेज़ी की लाग हमारी साधिकार भिक्षा में हमेशा मौजूद रहेगी। अगर हम जर्मन भाषा के द्वार पर जाते तो उसकी लाग रहना भी वैसा ही स्वाभाविक होता जैसी कि अब अंग्रेज़ी की है। पर परिस्थितियों से बाध्य हो कर

हम अंग्रेज़ी के ही द्वार पर खड़े हो सकते हैं। किसी और पर नहीं।

इसके इलावा जो सज्जन इस विज्ञान में अधिक ज्ञान की अभिलाषा से और अधिक पढ़ने के लिए उत्सुक होंगे उन्हें निःसन्देह आंगल-भाषा की पुस्तकें पढ़नी पड़ेंगी—क्योंकि हमारी हिन्दी भाषा इस में बहुत ही गरीब है,—सो इस लिए भी जगह २ आंगलभाषा के पारिभाषिक शब्दों को घड़े हुए या अन्य हिन्दी के पारिभाषिक शब्दों के साथ लिख दिया गया है।

कई जगह मैंने हिन्दी का पारिभाषिक शब्द कोष्ठ में दिया है और कई बार अंग्रेज़ी का पारिभाषिक शब्द। मैंने अपनी विचारशक्ति के आधार पर इन बातों का निर्णय किया है। और जैसा न्याय्य समझा किया है। मैं भली प्रकार से जानता हूँ कि कई सज्जन मुझसे इस बात में मतभेद रक्खेंगे। परन्तु अपने इस कार्य की सार्थकता सिद्ध करने के लिए मैं इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि कई जगह जहाँ पर हिन्दी का नया घड़ा हुआ पारिभाषिक शब्द मुझे ठीक जंचा है वहाँ मैंने उसके पर्याय-वाची अंग्रेज़ी शब्द को कोष्ठ में रक्खा है। पर जहाँ पर इस प्रयत्न में असफलता प्रतीत हुई है वहाँ पर हिन्दी शब्द को कोष्ठों में लिखते हुए ये प्रगट किया गया है कि ये केवल हिन्दी परिभाषा निर्माण में मेरा असफल प्रयत्न-मात्र है। कई जगह केवल हिन्दी शब्द का ग्राह्य अर्थ सूचित करने की दृष्टि से भी साथ ही कोष्ठ में अंग्रेज़ी शब्द दे दिया गया है। कई जगह अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग एक और उद्देश्य को लक्ष्य करके भी किया गया है। इस उद्देश्य का निर्देश अगले गद्यांश (पैरा) में किया गया है। कई जगह जहाँ पर केवल अंग्रेज़ी शब्द ही प्रयुक्त किए गए हैं वहाँ पर उनका अर्थ साथ ही हिन्दी भाषा में समझा दिया गया है। कहीं, जहाँ पर ऐसा अर्थ

नहीं समझाया गया है; याद रहे कि पुस्तक में पहिले कहीं उनका अर्थ समझाया जा चुका है।

नोट—अक्षर संयोजकों ने बहुत से कोष्ठ असावधानी से इधर उधर लगा दिए हैं। विशेष कर ३२ से ४८ तक के पृष्ठों में ये असावधानी प्रूफ संशोधन में प्रमाद के कारण ज्यों कि त्यों पुस्तक में चली गई है। सो इन स्थलों पर पाठकों को कोष्टों का अनावश्यक सा प्रयोग देखने को मिलेगा।

इस पुस्तक के कई भागों को समझने के लिए पाठक को अकसर पाश्चात्यायुर्वेद के उन ज्ञाताओं के पास जाना पड़ेगा कि जिन्होंने इस विषय को केवल मात्र आंगल भाषा में ही पढ़ा है। या ये पुस्तक विद्यालयों में जहाँ पर पढ़ाई जाएगी वहाँ भी इसके पढ़ाने वाले ऐसे ही सज्जन होंगे। उनकी सुविधा को भी दृष्टि में रखते हुए कई जगह पर आंगल भाषा के शब्दों का अधिक विन्यास किया गया है। जब आयुर्वेद के ऐसे उपाध्याय जिन्हें पाश्चात्यायुर्वेद का हिन्दी में अच्छा ज्ञान होगा, पर्याप्त संख्या में आसानी से प्राप्य होते जायेंगे तब इन अनावश्यक बहुसंख्यक आंगलभाषा के शब्दों का समावेश निरर्थक होता जायगा और इस लिए उनको पुस्तक की पुनरावृत्तियों में शनैः २ निकाल दिया जायगा। और जब इस विषय की अधिकाधिक ज्ञान की पुस्तकों से हिन्दी भरपूर हो जायगी और इस कारण पाश्चात्यायुर्वेद के ज्ञान के आकांक्षियों को आंगल भाषा की पुस्तकों की शरण की अपेक्षा न रहेगी तो तब आप देखेंगे कि इस पुस्तक से भी कुल आंगल भाषा के शब्द कहीं दूर हो चुके होंगे।

स्मरण रहे कि आंगल भाषा के शब्दों का समावेश केवलमात्र पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए और हिन्दी भाषियों के

हित को दृष्टि में रख कर किया गया है। आंगल भाषा की सहायता या उन्नति को दृष्टि में नहीं रक्खा गया है।

इस विषय की पुस्तकों में चित्रों की अत्यन्त आवश्यकता है पर धनाभाव के कारण दुःख है कि चित्रों का समावेश नहीं किया जा सका। दूसरा कारण यह भी है कि यदि चित्रों का समावेश किया जाय तो पुस्तक का दाम मंहगा हो जाय। दाम अधिक होने से पुस्तक पर्याप्त संख्या में न बिक सके और इस कारण इसकी उपयोगिता बहुत कम हो जाय। पर यदि वैद्य संसार ने अपनाया तो पुनरावृत्तियों में चित्रों का समावेश अवश्य किया जायगा।

पहिले मेरी इच्छा फिरंग और सूज़ाक दोनों विषयों की एक ही पुस्तक लिखने की थी। पर पहिले कुछ अध्याय लिखने के बाद इस विचार को बदलना पड़ा और इन लिखे हुए अध्यायों की काट छांट करनी पड़ी। आशा है कि इस फिरंग की पुस्तक के बाद सूज़ाक विषय की पुस्तक भी शीघ्र ही भेंट की जा सकेगी।

मैं इस पुस्तक के लिखने में उन सब लेखकों का ऋणी हूँ जिनकी पुस्तकों से मैंने थोड़ी बहुत सहायता ली है। इन पुस्तक लेखकों के नाम पुस्तक में यथा-स्थान दे दिए गए हैं।

मैं स्वनामधन्य श्रीमान् डाक्टर आशानन्द जी का अत्यन्त अनुगृहीत हूँ। उन्हों ने उत्कट कार्य व्यग्र होते हुए भी अपना अमूल्य समय निकालकर इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ने का कष्ट किया है। और तत्पश्चात् एक, इस पुस्तक की अनुरूप, सारगर्भित एवं मार्मिक भूमिका लिख कर मुझे कृतार्थ किया है। पुस्तक का अवलोकन करते हुए उन्होंने अपने अनुभव पूर्ण निर्देशों से इस पुस्तक की त्रुटियों और कमियों की ओर मेरा ध्यान कई बार आकर्षित किया है। यद्यपि उनकी

इस कृपा से इस पुस्तक की बहुत सी स्खलनात्मक अपूर्णताओं का परिशोध हो गया है। पर मुझे खेद इस बात का है कि कार्याधिक्य एवं पुस्तक प्रकाशन की शीघ्रता के कारण मैं उनके कुछ निर्देश-रूप आदेशों का परिपालन नहीं कर सका हूँ। आशा है कि डाक्टर जी, वैद्यवर एवं सब पाठकवृन्द मुझे इस के लिए क्षमा करेंगे। भावी में होने वाली पुनरावृत्ति बहुत ही परिष्कृत, परिवर्द्धित एवं संमार्जित कर दी जाएगी।

हिन्दी जन समाज यदि यह चाहता है कि इस प्रकार की विज्ञान की पुस्तकों के अधिकाधिक बढ़ाने का यत्न किया जाय तो मेरी एक ही मांग है। वह यह कि मुझे किसी न किसी तरह इन पुस्तकों के प्रकाशनार्थ, आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए। ये सहायता कई प्रकार से हो सकती है। प्रत्यक्ष रूप में या परोक्ष रूप में। प्रत्यक्ष रूप में, ऐसे कि कोई दानी सज्जन ग्रन्थ-प्रकाशनार्थ दान देकर अनुगृहीत करें इत्यादि। परोक्ष रूप में इस तरह कि हिन्दी-भाषा-भाषी इस पुस्तक को अपनाएँ। हिन्दी के सब वाचनालयों में मंगवाएँ। खुद पढ़ने के लिए मंगवाएँ। आयुर्वेद के महाविद्यालयों की पाठविधियों में पाठ्य-पुस्तक रूप में सम्मिलित करें। या पुस्तकोचित पुरस्कार आदि से लेखक को प्रोत्साहना दें इत्यादि।

मेरी धारणा तो पाश्चात्यायुर्वेद के कुछ ऐसे ज्ञान को जो अब तक हिन्दी में नहीं आ सका है, हिन्दी में लिख डालने की है। और इस कार्य की तैयारी के लिए यदि मैं अपनी अनुचित प्रशंसा या डींग नहीं मारता हूँ तो नम्रतापूर्वक कह सकता हूँ कि मैंने तपस्या भी बहुत की है। पूरे १४ साल तक गुरुकुल में रहकर, पहिले दस सालों में साधारण विद्याध्ययन और पिछले ४ सालों में आयुर्वेद का अध्ययन किया है, तत्पश्चात् एम. बी.बी. एस. की उपाधि को भी दो साल एफ.

एस. सी. के और ५ साल मैडिकल कालिज के व्यतीत कर के प्राप्त किया है । इस के अतिरिक्त आंगलभाषा की बी. ए. और हिन्दी (पञ्जाब यूनिवर्सिटी की) हिन्दी-प्रभाकर इत्यादि परीक्षाओं को उत्तीर्ण किया हुआ है । इतनी तैयारी के बाद मैंने इस कार्य में हाथ डाला है । मेरी कामना पूर्ण होगी या नहीं, मैं नहीं कह सकता हूँ। सब परमेश्वर की इच्छाधीन है । पर एक मात्र हिन्दी जनता से ये अपील है कि उन्हें इस कार्य को सफल बनाने में कुछ न कुछ हिस्सा ज़रूर बटाना चाहिए ।

अब मैं अपने पिता जी का अत्यन्त धन्यवाद करता हूँ । उन्होंने आवश्यक धनराशि देकर इस पुस्तक को छापने में मुझे समर्थ बनाया है । अगर उनकी धनसम्बन्धी सहायता न होती तो ये पुस्तक, शायद मुद्रणालय का मुख बिना देखे ही रह जाती । मुझ पर मेरे पूज्य पिता जी ने अपार कृपाएँ की हैं । और इन कृपाओं सम्बन्धी उनके ऋण से मुक्त होना तो मेरे लिए असम्भव सा ही है । पर तो भी उनकी इस पुस्तक सम्बन्धी कृपा के प्रति मैंने यहाँ दो चार शब्द लिख कर अपनी कृतज्ञता का प्रकाशन किया है । यदि पाठकवृन्द समझते हों कि इस पुस्तक से उनको कुछ लाभ हुआ है तो उन्हें अवश्य ही मेरे पिता जी का भी धन्यवाद करना चाहिए क्योंकि ये उन्हीं की ही कृपा है कि जिससे वे इस मुद्रित पुस्तक को पढ़ने के लिए प्राप्त कर सके हैं ।

अपने उन गुरुओं का कि जिनके चरणों में बैठ कर मैंने आयुर्वेद शिक्षा प्राप्त की है मैं बहुत कृतज्ञ हूँ । और उनके गुरु-ऋण से मुक्त होना बहुत कठिन है । यद्यपि वे इस पुस्तक को एक छोटी सी दक्षिणा समझ कर स्वीकार करें ऐसी मेरी प्रार्थना है। उन गुरुओं में विशेष उल्लेखनीय नाम श्री पण्डित धर्मदत्त जी और श्री डाक्टर राधाकृष्ण जी के हैं ।

मैं भारती प्रिंटिंगप्रेस के प्रबन्धक और कार्यकर्ताओं का भी धन्यवाद करता हूँ। उन्होंने बड़ी कार्य-कुशलता के साथ पुस्तक का मुद्रण सम्पन्न किया है।

मैं उन सब महानुभावों का कि जो मेरे इस प्रयत्न को सराहते रहे हैं और इस प्रकार मुझे प्रोत्साहन देते रहे हैं बहुत आभारी हूँ।

श्री प्रकाशचन्द्र जी, लाहौर का मैं बहुत कृतज्ञ हूँ। जिन्होंने अपनी देख रेख में मुद्रण के कार्य को संभाले रक्खा है। एतदर्थ मैं उनका बहुत धन्यवाद करता हूँ।

पुस्तक के परिशिष्टों में से एक में फिरंग रोग सम्बन्धी आयुर्वेदीय ज्ञान की चर्चा भी कर दी गई है।

तिथि १८—११—३६

इन्द्रसेन
आयुर्वेदालंकार

विषय सूची—

—:—

—:—

प्रथम अध्याय

रोग का साधारण परिचय

इस संसार में आतशक महामारी की तरह फैली हुई है। हज़ारों रोगी इस रोग से सताए हुए हैं। यदि हम चाहें तो दुनिया से इस रोग का समूल नाश कर सकते हैं। परन्तु इस कार्य के लिए सब मनुष्यों की सहायता चाहिए। हमने कई रोगों को दूर करने के लिए अनेकों उपाय सोचे हैं। उदाहरणार्थ कोढ़ के रोग को दूर करने के लिए हमने कोढ़ियों के उपनिवेश बसाए हैं। उनको स्वस्थ मनुष्यों की बस्तियों से पृथक् कर दिया है। पर इस आतशक की बीमारी के लिए कुछ नहीं किया है। इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में मैं इस विषय पर विचार करूंगा।

आतशक का रोग तो पहिले भारत में होता ही नहीं था। इसे आयुर्वेद की पुस्तकों में फिरंग रोग के नाम से पुकारा जाता है। इस नाम से ऐसा मालूम होता है कि योरोप निवासियों के भारत-प्रवेश के साथ ही साथ इस रोग का प्रवेश भी इस देश में हुआ है। योरोप निवासियों को फ़िरंगी के नाम से पुकारा जाता था और इसी लिए इस रोग का नाम भी फिरंग रोग रक्खा गया।

यहाँ पर पाठकों के मनोरंजनार्थ दो एक शब्द सिफलिस शब्द के विषय में लिख देने उचित प्रतीत होते हैं। अंग्रेज़ी में आतशक को सिफलिस कहा जाता है। सिफलिस शब्द सिम और फैलिस दो शब्दों से मिल कर बना है। इन शब्दों का अर्थ है "प्रेम के साथ"।

ये रोग पुरुष और स्त्रियों दोनों को होता है। मुख्य रूप से संयोग द्वारा फैलता है। उदाहरणार्थ यदि किसी औरत को आतशक हुआ हुआ हो, और वो एक स्वस्थ पुरुष के साथ संयोग करे तो स्वस्थ पुरुष भी इस रोग से पीड़ित हो जाता है। इसी प्रकार एक पुरुष जो आतशक का बीमार हो और किसी स्वस्थ औरत के साथ संभोग करे तो उस औरत को भी आतशक का शिकार बना देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ये बीमारी छूत की बीमारी है, और छूत से फैलती है।

वेश्याएँ अकसर इस बीमारी का शिकार होती हैं, और उनसे ये बीमारी बहुत फैलती है। मैंने बीमारों के मुख से कई बार सुना है कि वो दिवाली या ईद मनाने गए थे, और इस बीमारी को चिपटा लाए हैं।

हरेक बीमार जो एक बार आतशक का शिकार हो जाता है, हमेशा के लिए छूत द्वारा बीमारी नहीं फैलाता है। वो कब बीमारी फैला सकता है और कब नहीं? इस बात का ज़िकर तीसरे अध्याय में किया जायगा।

इस बीमारी के साथ अकसर सुज़ाक की बीमारी भी बहुत मिलती है। बहुत से बीमार इन दोनों के रोगी होते हैं। ये दोनों बीमारियाँ मुख्यतः संयोग से फैलती हैं। और

इसलिए कई ग्रन्थकार इन दोनों रोगों को रति-रोगों के नाम से पुकारते हैं।

आतशक की चार अवस्थाएँ होती हैं। इस रोग की पहिली अवस्था मनुष्यों और स्त्रियों में उत्पादक अंगों की भिन्नता के कारण कुछ भिन्न होती है। पर शेष तीनों अवस्थाएँ एक जैसी होती हैं। इन अवस्थाओं का विशेष वर्णन अगले अध्यायों में किया जायगा। यहाँ पर संक्षेप से अवस्थाओं का थोड़ा सा परिचय दिया जाता है।

मनुष्यों में पहिली अवस्था—जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, जब कोई मनुष्य किसी रोगी स्त्री के साथ सम्भोग करे, तो उस मनुष्य को यह रोग हो जाता है। पहिले पहल इस रोग का एक फोड़ा उस मनुष्य के शिश्न पर निकलता है। ये फोड़ा कुछ समय तक रह कर अच्छा हो जाता है।

ये रोग एक जीवाणु द्वारा होता है। इस जीवाणु को लैटिन भाषा में Spirochœta pallida कहते हैं। हम इसे फिरंग रोग का जीवाणु कह कर पुकार सकते हैं। इस जीवाणु का प्रवेश रोग से नए ग्रस्त हुए २ व्यक्ति में होना आवश्यक होता है। अन्यथा वह व्यक्ति रोग ग्रस्त नहीं होता है। संभोग की प्रक्रिया में जब मनुष्य का शिश्न रगड़ खाता है तो उस पर घिसड़ें लग जाती हैं। इन घिसड़ लगी हुई जगहों से ये जीवाणु आसानी से प्रवेश कर सकता है। इसके अतिरिक्त शिश्न की त्वचा बहुत नरम होती है। सो कई बार उपरोक्त घिसड़ (Abrasion) के न होने पर भी संभव है कि रोग का जीवाणु प्रवेश कर जाय। रोग का जीवाणु प्रवेश करके विषें (Toxins) तैय्यार

करता है। ये विषें शरीर के तन्तुओं का नाश करती हैं। इस क्रिया द्वारा ये शिश्न का फोड़ा जिसका जिक्र ऊपर किया गया है बनता है। फोड़े के चारों ओर का शिश्न सूज जाता है। इस प्रक्रिया को पूरा होने में कुछ दिन लग जाते हैं। इस समय को रोग प्रदर्शन का समय (Incubation period) कहते हैं। अर्थात् जावाणुओं के प्रवेश के समय से लेकर रोग के प्रथम लक्षणों के प्रगट होने तक के अन्तर को रोग-प्रदर्शन समय कहते हैं। ये समय फिरंग रोग में १४ दिन से लेकर एक महीने तक का होता है। और आम तौर पर २१ दिन होता है।

स्त्रियों में पहिली अवस्था—जिस प्रकार मनुष्यों में शिश्न पर फोड़ा निकलता है, उसी प्रकार अगर स्वस्थ स्त्री रोगी पुरुष से संयोग करे तो उसके भग में रोग का प्रथम लक्षण एक फोड़ा निकलता है। ये फोड़ा कुछ समय तक रह कर अच्छा हो जाता है। औरतों में भी संयोग के कारण गुह्येन्द्रियों में इधर उधर घिसड़ें (Abrasions) लग जाती हैं। और इन जगहों से जीवाणुओं का प्रवेश हो जाता है। इन जगहों के अतिरिक्त, इस रोग के जीवाणु गुह्येन्द्रियों की स्वस्थ श्लेष्म-कला में से भी प्रवेश करने की शक्ति रखते हैं।

द्वितीय अवस्था—रोग की प्रथमावस्था तो इस प्रकार समाप्त हो जाती है, पर रोग के जीवाणु और उनकी विषें सारे शरीर में फैल जाती हैं। पहले तो ये केवल फोड़े की जगह पर मौजूद होती हैं, पर अब इस द्वितीय-अवस्था में सारे शरीर में व्याप्त हुई हुई होती हैं। ये अवस्था पहिली अवस्था

के प्रायः छे हफ़्ते से लेकर २ महीने के बाद आती है। कई चिकित्सक इस समय को द्वितीय रोग-प्रदर्शन-समय के नाम से पुकारते हैं। इस अवस्था में सारे शरीर पर स्फोट (Rash) हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य ये है कि रोगी में पहिला फोड़ा ठीक हो जाने के करीबन १॥ महीने बाद सारे शरीर की त्वचा पर एक प्रकार के स्फोट हो जाते हैं। इस अवस्था का विशेष रूप से वर्णन छठे अध्याय में किया जायगा। रोगी इलाज कराता है, और इलाज से ये स्फोट दूर हो जाते हैं। रोगी फिर पहिले की तरह ठीक हो जाता है। पर बीमारी अभी भी उसके शरीर में विद्यमान होती है।

तृतीय अवस्था—इस अवस्था में शरीर के किसी भी भाग में आतशक के प्रकोप के कारण छोटे छोटे अर्बुद से निकल आते हैं। इन्हें अंग्रेज़ी में गम्मा (Gumma) कह कर पुकारा जाता है। इस अवस्था का विशेष वर्णन सातवें अध्याय में किया जायगा।

कई रोगियों में रोग की चतुर्थावस्था भी पाई जाती है। इसका वर्णन आठवें अध्याय में किया जायगा। इस अवस्था के फिरंग को वातिक-फिरंग कहते हैं। इस अवस्था में रोगी अन्त में जाकर सौन्मादिक-सार्वदैहिक-पक्षाघात (General paralysis of insane) से आक्रान्त हो जाते हैं।

द्वितीय अध्याय

रोग को दूर करने तथा उस से सुरक्षित रहने के उपाय—

इस अध्याय को मैं सरसरी तौर पर लिख रहा हूँ। इस विषय को विस्तार से लिखने के लिए तो एक पृथक् पुस्तक लिखने की आवश्यकता है।

(१) इस के दूर करने के उपायों में सब से प्रथम उपाय 'शिक्षा' है।

सदाचार की शिक्षा का होना नितान्त आवश्यक है। नवयुवकों को इस बात का पूर्ण रूप से पता होना चाहिए कि उनके क्या कर्तव्य हैं? समाज में उनका आचरण कैसा होना चाहिए? इत्यादि।

सदाचार की शिक्षा के अतिरिक्त स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों की शिक्षा बड़ी आवश्यक है। नवयुवकों को गुह्य-रोगों का ज्ञान होना चाहिए। गुह्य-रोगों का पूर्ण ज्ञान एक आदमी को सदाचारी रखने में बहुत सहायक होता है।

इन शिक्षाओं को फैलाने के लिए किन साधनों का प्रयोग करना चाहिए ये यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं है। विद्यालय या महाविद्यालयों की पाठ-विधियों में इन शिक्षाओं

का उपयुक्त समयों में समावेश होना चाहिए। समाज के सुधारकों और लोक-हितैषियों को व्याख्यानों, सिनेमा-चित्रों, जादू की लालटेन के खेलों और ट्रैक्टों इत्यादि द्वारा इन शिक्षाओं का प्रचार करना चाहिए।

पत्र, पत्रिकाएँ, रोगियों का प्रदर्शन, और अन्यान्य विधियाँ इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयोग में लानी चाहिएँ।

(२) शिक्षा के बाद दूसरा उपाय "कानून" है। कानून निम्न प्रकार से सहायता कर सकता है।

(क) ये आवश्यक होना चाहिए कि हरेक प्रकार के चिकित्सक (हकीम, वैद्य, डाक्टर इत्यादि) इन रोगियों की इत्तिला राज्य कर्मचारियों को देवें। यदि वे ऐसा न करें तो उन्हें दण्ड मिले।

(ख) इन रोगियों की चिकित्सा राज्य की ओर से लाज़मी होवे। और चिकित्सा की अवधि का प्रतिबन्ध राज्य-कर्मचारियों के आधीन हो।

(ग) रोग की चिकित्साओं में प्रयुक्त होने वाली दवाइयों का वितरण राज्य की देख रेख में भली-प्रकार होना चाहिए।

(क), (ख), (ग), में लिखे गए तरीकों पर बहुत कुछ समालोचना और विवेचना की आवश्यकता है, पर मैं इस वादविवाद में न पड़ कर आगे चल रहा हैं।

(३) वैश्याओं की शरीर परीक्षा—समुन्नत, सफल सभ्यता का एक पहलू यह होना चाहिए था कि वैश्याओं के किले समूल नाश हो जाते। परन्तु वर्तमान उन्नत सभ्यता इस विषय में क्या परिणाम पैदा कर रही है, ये जतलाने की

ज़रूरत नहीं है। कहने का सारांश इतना ही है कि जबतक वेश्याघर या बाज़ार जैसे कि दिल्ली का चावड़ी बाज़ार लखनऊ का चौक, बनारस की दालमण्डी और लाहौर की हीरामण्डी वगैरह मौजूद हैं, तब तक वेश्याओं की शरीर-परीक्षा भी नितान्त आवश्यक है। वो वेश्याएँ जो इन रोगों के लिए संक्रामक हों वश्या-वृत्ति करने की आज्ञा से सर्वथा वञ्चित रक्खी जानी चाहिएँ।

(४) लड़के और लड़कियों को विषय-वासना के प्रलोभनों से सुरक्षित रखने के उपायों का प्रयोग करना नितान्त आवश्यक है। इस कार्य की सिद्धि के लिए, राजकीय, सामाजिक, धार्मिक, तीनों प्रकार की सहायताएँ आवश्यक हैं। यहाँ पर इस उपाय का निर्देश मात्र किया जा रहा है। इस पर विस्तृत विचार करना इस पुस्तक का लक्ष्य नहीं है।

(५) शारीरिक-सुरक्षा के उपाय—पहिले तो आदमी को अपना घर ऐसा बनाना चाहिए कि आग न लगने पाए। या दूसरे शब्दों में कहा जाय तो फ़ायरप्रूफ़ होना चाहिए। पर अगर आग लग ही जाए तो उसके पास इस प्रकार के साधन भी होने चाहिएँ कि आग को तत्काल बुझा सके। पर, इसका यह मतलब नहीं कि, क्योंकि आप के पास तत्काल बुझाने के साधन हैं इसलिए ज़रूर मकान को आग लगा कर देखो।

इन सुरक्षा के उपायों में तत्काल लगी आग को, बुझाने के साधनों का उल्लेख किया जायगा। ताकि आग भड़कने और सर्वनाश करने में सफल न हो। मैं फिर चेतावनी देता हूँ कि पाठक इन साधनों को पढ़कर यह न समझें कि अब तो

सुरक्षा का उपाय मिल गया और अनुचित विषय वासना में रत हों। अनुचित विषयप्रवृत्ति अपने घर को आग लगाने के समान है। और अगर तुम्हारे पास सुरक्षा के उपाय होवें भी तो एक तो वो १००% हमेशा सफल होने वाले नहीं होते; और अगर उनके १००% सफल होने की आशा भी हो तो तब भी उनके बूते पर अपने घर को आग लगाना सरासर मूर्खता है।

यह उपाय डूबते को सहारा देकर बचाने के ख्याल से लिखे जा रहे हैं। न कि अच्छे को डूबने का उपदेश हैं। पाठक ध्यान से सोचें और पढ़ें।

यदि कोई पुरुष किसी वेश्या से या आक्रान्त स्त्री से सम्भोग कर बैठे तो उसे निम्न प्रकार सुरक्षा के उपायों का अवलम्बन करना चाहिए।

(१) सम्भोग के बाद पेशाब फिरना चाहिए।

(२) मूत्रोत्सर्ग के बाद, साबुन और कोसे पानी से शिश्न के आस पास की सारी जगह का अच्छी तरह प्रक्षालन करना चाहिए।

(३) इसके बाद किसी कृमिनाशक पदार्थ के (जैसे पोटाशियम परमैंग्नेट के हलके घोल १—२००० में, या कार्बोलिक एसिड़ १—४० में,) घोल से शिश्न और आस पास की त्वचा का प्रक्षालन करना चाहिए।

(४) इसके बाद ३३% कैलोमल (पारदसू हरिद—इसे कई रसकपूर कहते हैं—अंग्रेजी में इसे Calomel कहते हैं।) की मलहम शिश्न पर सब जगह मलनी चाहिए।

यदि संभोग से पहले संभव हो तो ये मलहम मल लेनी चाहिए और फ्रैंचलैटर्स का (इसे कई फ्रैंच-लैदर भी कहते हैं।) प्रयोग करना चाहिए।

कई वार वैश्याएँ (या अन्य औरतें) पहले शराब पिलाती हैं और फिर सम्भोग करती हैं। इस हालत में मनुष्य सम्भोग के बाद अपने काबू में नहीं होता है। नशा उतरने के बाद जब उसे सुरक्षा का ख्याल आए तो उपरोक्त उपायों को बर्तना चाहिए।

इन उपायों को बर्तने से गारंटी नहीं है कि ये रोग बिल्कुल ही नहीं होगा। पर ये सर्वथा सत्य है कि इसके होने की आशंका बहुत अंशों में बहुत कुछ दूर हो जाती है।

सुरक्षा के दो मुख्य सिद्धान्त हैं।

(१) जो मनुष्य आक्रान्त नहीं हैं, उन्हें आक्रमण से सुरक्षित रखना।

(२) जो पुरुष आक्रान्त हैं और आतशक को फैला सकते हैं, उनका इलाज करना, ताकि वो यदि रोग-रहित न हो सकें तो कम से कम आक्रमण फैलाने में तो असमर्थ हो जाएँ।

ऊपर, पाँच सुरक्षा के उपाय बताए जा चुके हैं। अब एक छठा उपाय बताया जाता है जो कि दूसरे सिद्धान्त के आधार पर है। उपरोक्त पाँच उपाय मुख्यतः प्रथम सिद्धान्त के आधार पर हैं। एक कानून वाला उपाय दूसरे सिद्धान्त को भी पुष्टि करता है।

(६) उन पुरुषों की जो इस रोग के शिकार हों शीघ्र ही चिकित्सा करनी चाहिए। चिकित्सा से रोगी के आक्रान्त करने लायक रहने का समय भी बहुत घट जाता है। इस कारण चिकित्सा का सुरक्षा में भी बहुत बड़ा भाग है। रोगियों की चिकित्सा ज्यों ही उनके रोगी होने का निश्चय हो प्रारम्भ होनी चाहिए।

अध्याय तीसरा

संक्रामकता (Infectivity)

आतशक का रोगी कब रोग को फैला सकता है ? ये प्रश्न बहुत महत्व का है। इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि जब रोग का कठोर व्रण (Hard chancre) हो जाय तो जानो कि रोगी के शरीर में रोग के जीवाणु सर्वत्र फैल गए हैं । यद्यपि स्थानीय कठोर व्रण केवल स्थानीय जीवाणुओं की क्रियाशीलता का सूचक है, जो तन्तुओं का नाश कर रहे हैं, परन्तु प्रश्न ये है कि जब जीवाणु एक स्थान पर विद्यमान हैं तो हम कैसे जाने कि वो सारे शरीर में फैले हैं या नहीं ? और ये निश्चय करना कि वो कितने समय तक सिर्फ उस स्थान तक सीमित रहते हैं और कब सारे शरीर में फैलते हैं बहुत कठिन है। तो इस सन्देह के स्थान में, संक्रामकता की दृष्टि से यही मानना ठीक है कि जब मनुष्य को कठोर-व्रण हो गया तो जानो कि उसके सारे शरीर में संभवतः रोग के जीवाणु व्याप्त हो चुके हैं और इस लिए उसके शरीर के सब स्राव रोग को फैला सकते हैं। अर्थात् उसकी लाला, दूध, शुक्र, फोड़ों का मवाद वगैरह सब चीज़ें रोग को फैला सकती हैं।

उपरोक्त युक्ति द्वारा और अनुभव से भी यह स्पष्ट है कि रोगी से, प्रथमावस्था में रोग के फैलने का बहुत डर होता है।

वो रोग को फैलाने में पूर्ण रूप से समर्थ होता है। इसके बाद द्वितीयावस्था में भी वह रोग को फैलाने में समर्थ होता है। द्वितीयावस्था के लक्षणों के बाद रोगी में, रोग को फैलाने की शक्ति, धीरे २ घटने लगती है। और तृतीयावस्था में, बाद में जाकर अर्थात् तृतीयावस्था में कुछ समय बीत जाने के बाद रोगी रोग को फैलाने में असमर्थ-प्राय ही हो जाता है। अर्थात् या तो रोग को बिलकुल ही नहीं फैला सकता और अगर कुछ फैला सकता है तो न के बराबर। स्त्रियों में ये देखा गया है कि काफ़ी अरसे तक वो तृतीयावस्था में भी अपने गर्भ को और इस प्रकार अपनी सन्तति को ये रोग फैला सकती हैं। जब इस अवस्था में उनके बच्चा होता है तो अकसर इस रोग से ग्रस्त पाया जाता है। इस से ये परिणाम निकलता है कि रोगी तृतीयावस्था में भी काफी समय तक रोग फैलाने के खतरे से पूरी तरह बाहर नहीं होता है।

इन स्त्रियों में ये सर्वथा सम्भव है कि अगर तृतीयावस्था में स्वस्थ पुरुष के साथ सम्भोग करें तो स्वस्थ पुरुष को तो ये रोग न होवे पर उनका इस सम्भोग से पैदा हुआ २ बच्चा इस रोग से पीडित हो। अर्थात् वह रोग पीड़ित स्त्री इस अवस्था में उस स्वस्थ पुरुष को तो रोग का शिकार न बना सकी पर उसका बच्चा इसका शिकार हुए बगैर न रह सका। इसको इस तरह भी स्पष्ट किया जा सकता है कि वह स्त्री तृतीयावस्था में जब कि संसर्ग से रोग को फैलाने में असमर्थ हो चुकी होती है तो तब भी हो सकता है कि खून द्वारा या अण्ड

(Ovum) द्वारा अपनी सन्तति को रोगाक्रान्त करने में समर्थ हो।

सारांश ये है कि प्राथमिक फोड़ा निकलने के बाद पुरुष और स्त्री रोग को फैलाने में समर्थ हो जाते हैं। केवल समर्थ नहीं होते परन्तु रोग को फैलाने में बड़ा भारी कारण होते हैं, क्योंकि उनसे रोग ज़रा सी छूत से भी (संयोग के विना भी) फैल सकता है।

इस के बाद द्वितीयावस्था के स्फोटों के अच्छा होने तक वो रोग फैलाने में बहुत समर्थ होते हैं।

ये स्फोट अच्छा हो जाने के बाद, वो छूत से रोग फैलाने में शनैः २ असमर्थ होने लग जाते हैं। तृतीयावस्था के शुरु के समय भी वो थोड़ी बहुत छूत द्वारा बीमारी फैला सकते हैं। पर बाद में जाकर वो संसर्ग द्वारा रोग फैलाने में सर्वथा असमर्थ हो जाते हैं। पर अभी शुक्राणु, *डिम्ब (Ovum) या खून द्वारा रोग फैला सकते हैं। इस के बाद और समय व्यतीत हो जाने पर वो इन तरीकों द्वारा भी रोग फैलाने में असमर्थ हो जाते हैं। इस समय की अवधि कि कब वो सन्तति को भी रोग फैलाने में असमर्थ हैं, निश्चित करना बहुत कठिन है। कई रोगी सम्भव है सारी आयु पर्यन्त इस असमर्थता को न दिखा सकें। अर्थात् एक भी बच्चा रोग रहित पैदा करने में न समर्थ हो सकें। इस विषय पर चौथे अध्याय में फिर थोड़ा बहुत विचार किया जायगा। और उस के बाद सहज

* मेरा डिम्ब या अण्ड से मतलब Ovum से है। इस बात को Ovum कोष्ठ में देकर स्पष्ट कर दिया गया है।

फिरंग के अध्याय में फिर थोड़ा बहुत प्रकाश डाला जायगा।

क्या वह व्यक्ति जिसके रक्त की परीक्षा करने पर वासरमैन परीक्षा (इसका वर्णन आगे चल कर किया जायगा।) + (धन चिन्ह से परीक्षा की उपस्थिति सूचित होती है।) धन चिन्ह वाला इस रोग को फैला सकता है? इस का यह उत्तर है कि वासरमैन परीक्षा का धन चिन्ह युक्त होना संक्रामक काल में भी होता है और इसके बाद भी होता है। अर्थात् इसकी उपस्थिति संक्रामक काल का अतिक्रमण कर जाती है। हो सकता है कि रोगी में वासरमैन की परीक्षा तो + हो, पर रोगी रोग फैलाने के खतरे से कतई बाहर हो।

रोग के इलाज का संक्रमणकाल पर बहुत प्रभाव होता है, ये संक्रमणकाल की अवधि को बहुत घटा देता है।

अब दो बड़े ज़रूरी प्रश्न उठते हैं?

(१) क्या इस रोग से पीड़ित स्त्री या पुरुष को विवाह करना चाहिये या नहीं?

(२) यदि करना हानिकारक नहीं तो कब कराना चाहिये?

इन प्रश्नों का निर्विवाद उत्तर तो यही है कि जब रोगी रोग रहित हो जाय तो उसे विवाह कर लेना चाहिये। अब प्रश्न यह होता है, कि हम कैसे जाने कि रोगी रोगमुक्त हो गया है या नहीं? डाक्टरों का (Allopathic चिकित्सकों का) यह मत है कि क्रियात्मिक दृष्टि से जब रोगी के रक्त की वासरमैन परीक्षा ऋण चिन्ह युक्त (ऋण चिन्ह, परीक्षा की

अनुपस्थिति को सूचित करता है) हो जाय तो तब जानो कि वह रोग मुक्त हो गया है। पर अधिकांश मनुष्य इस हालत के आने से पहिले ही विवाह करने के इच्छुक होते हैं। और बार बार समझाए जाने पर भी अपनी बात से नहीं टलते हैं।

यदि ऐसे पुरुषों का विवाह स्थगित करना संभव न हो तो उन्हें कम से कम इस बात से सचेत कर देना चाहिये कि उन में से कोई भी संसर्ग द्वारा संक्रमण फैलाने में समर्थ न होवे। ऊपर बताया जा चुका है कि व्यक्ति कुछ अरसा तृतीयावस्था में रहने के बाद संसर्ग द्वारा संक्रमण फैलाने में असमर्थ हो जाते हैं। (यदि स्त्री या पुरुष में से कोई भी संसर्ग द्वारा संक्रमण फैलाने में असमर्थ होगा तो वो जान बूझ कर अपने जीवन संगी को आतशक का रोगी बनाने के पाप का भागी होगा।) ऐसे विवाहित युगलों से समाज को एक ही खतरा है कि उन के बच्चे सम्भवतः फिरङ्ग रोग के रोगी पैदा होवें। ऊपर बताया जा चुका है कि इस रोग के रोगी संसर्ग-जन्य संक्रामकता से स्वतन्त्र हो जाने के बाद भी काफ़ी समय तक शुक्राणुओं, डिम्बों (ova) या खून द्वारा (माता खून द्वारा भी फिरङ्ग का संक्रमण अपने बच्चे तक पहुँचा सकती है।) अपने बच्चों को इस रोग का रोगी बना सकते हैं। इस लिए कि ये युगल अपने आप अपने बच्चों को इस रोग की भेंट न देवें और इस प्रकार इस महापाप के भागी न बनें और न ही समाज के प्रति समाज को दूषित करने के दोषी बनें, इन्हें चाहिए कि जब तक वो इस प्रकार (अर्थात् सन्तति द्वारा) भी रोग फैलाने में असमर्थ न हो जाएँ सन्तानोत्पत्ति न करें।

अर्थात् उन्हें Contraceptive measures (गर्भ-निराकरण में सहायक होने वाले उपायों) को वर्तना चाहिए। इसी बीच उन में रोगी व्यक्ति को रोग का इलाज कराते रहना चाहिए ताकि उस के खून की वासरमैन परीक्षा ऋण चिन्ह युक्त हो जाय और वो सन्तति पैदा करने का वास्तविक अधिकारी बन सके।

यों तो प्रकृति भी आतशक के रोगियों के बच्चे कच्ची अवस्था में ही गिरा देती है। पर कई वार फिरङ्ग रोगयुक्त बच्चे पैदा हो ही जाते हैं और पल भी जाते हैं। ऐसी हालत आने ही न पाए, इस लिए गर्भ निराकरण के उपाय ऐसे युगलों को वर्तने आवश्यक हैं।

सहज फिरङ्ग—(Congenital syphilis) संक्रामकता का एक स्रोत ये सहजफिरङ्गी भी हो सकते हैं। सो इनका उल्लेख करना भी आवश्यक है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, कई बच्चे जन्म से ही पैदाइशी-आतशक के शिकार होते हैं। इन के विषय में ये प्रश्न उठता है कि क्या ये रोग को फैलाने में समर्थ होते हैं या नहीं? निःसन्देह प्रारम्भ में इन के द्वारा ये रोग विकट रूप से फैल सकता है। परन्तु धीरे २ इन में भी रोग को फैलाने की शक्ति कम होती जाती है। और यहाँ तक कि बाद में क्रियात्मक दृष्टि से, युवावस्था आने पर सर्वथा ही विलुप्त हो जाती है। जब तक कि आतशक के फोड़ों, स्फोटों, अर्बुदों या शोथयुक्त प्रदेशों में रोग के जीवाणु पर्याप्त संख्या में होते हैं, तब तक ये फोड़े वगैरह और रोगी के स्राव रोग को फैला सकते हैं। परन्तु जब इन में जीवाणुओं की संख्या बहुत घट जाती है तो रोगी फिर रोग को फैलाने में अशक्तप्राय

हो जाता है।

ये पैदाइशी आतशक के रोगी, बाद में अगर दुबारा आतशक के शिकार न बनें तो इन के बच्चे इस रोग से ग्रस्त हुए २, नहीं उत्पन्न होते हैं। अर्थात् यदि पैदाइशी आतशक का बीमार अपनी संक्रामक अवस्था से पार हो जाय (युवावस्था तक वह अवश्य अपनी संक्रामक अवस्था से पार हो ही जाता है) तो इस के बाद वह जो बच्चे पैदा करता है, इस रोग से ग्रस्त नहीं होते हैं। अर्थात वह शुक्राणु, खून या डिम्बों (ova) द्वारा भी इस रोग को फैलाने में असमर्थ होता है। यहां यह याद रहे कि संप्राप्त-फिरङ्ग (Acquired syphilis) का रोगी सांसर्गिक-संक्रामक अवस्था के पार हो जाने के बाद भी बहुत काल तक और कभी २ तो जन्म पर्यन्त, संयोग द्वारा पैदाइशी-फिरङ्ग फैलाने में समर्थ होता है। पैदाइशी आतशक की बीमार औरतों में भी उपरोक्त नियमानुसार (अर्थात् यदि उन के विवाह युवावस्था में जा कर किए जाँय तो) उन के बच्चे इस रोग से मुक्त होते हैं।

चतुर्थ अध्याय

आतशक किस तरह फैलता है ?

(क) रोग की प्रथमावस्था में प्राथमिक फोड़े से रोग निम्न अवस्थाओं में फैलता है।

(१) जैसा कि पहले बताया गया है, इस रोग को अक्सर वैश्याएँ फैलाती हैं। वैश्याएँ अनेक मनुष्यों से सम्भोग करती हैं, और कभी न कभी किसी न किसी ऐसे पुरुष से जिसे ये रोग हुआ हो संभोग कर लेती हैं। उस पुरुष से उनको ये रोग हो जाता है। और फिर ये स्वयं इस रोग के प्रसार का केन्द्र बन जाती हैं।

परन्तु आजकल वैश्याएँ कुछ समझदार होती जाती हैं। और वे प्रत्येक पुरुष के साथ संभोग करने के बाद ऐसे उपायों का प्रयोग कर लेती हैं जिससे उन्हें ये रोग न चिमटे। या वे पहिले गुप्त अंगों को भली प्रकार देखकर संभोग करती हैं। इस प्रकार यह देखा गया है कि वैश्याओं से इस रोग का फैलना पहिले की अपेक्षा कम हो रहा है।

(२) वैश्याओं के अतिरिक्त कई अन्य औरतें जो समाज की बाह्यदृष्टि से वैश्याओं का पेशा तो नहीं करती हैं पर वैसे मनुष्यों के साथ छिप छिप कर संभोग करती हैं, इस रोग को बहुत फैलाती हैं। मेरी सम्मति में वैश्याओं से अधिक ये औरतें रोग

को फैलाने में भाग लेती हैं। एक तो इनको आतशक से बचने के उपायों का भी कुछ नहीं पता होता है और दूसरे अगर इन्हें रोग हो जाय तो शर्म के मारे छिपाए रखती हैं। इलाज नहीं कराती हैं।

वैश्याएँ तो सम्भोग रुपये की खातिर करती हैं। परन्तु ये औरतें संभोग अकसर (क्योंकि कभी कभी रुपए के लिए भी करती हैं) विषयानन्द के लिए करती हैं। इनमें विषयलालसा का वेग उठता है और उसमें सब कुछ भूल जाती हैं कि पुरुष स्वस्थ है या नहीं ? रोग हो गया तो उसके क्या परिणाम होंगे ? इत्यादि।

(३) कई मनुष्य जो इस रोग के रोगी होते हैं अपने दूसरे साथियों के साथ या और छोटे लड़कों के साथ (गुद-मैथुन करते हैं। (विद्यालयों अर्थात् स्कूलों के मास्टरों में गुद-मैथुन की आदत बहुत पाई जाती है)। इस अमानुषिक व्यवहार से उस लड़के (Passive agent) की गुदा पर आतशक के फोड़े हो जाते हैं। इन फोड़ों का विशेष रूप होता है और इन्हें Condylomata (गुद-विस्फोट) कहा जाता है। इनका वर्णन आगे चलकर छठे अध्याय में किया जायगा।

इन लड़कों को भी गुद-मैथुन की आदत होती है या हो जाती है और ये अन्यों के साथ यही अमानुषिक व्यवहार करते हैं और इस तरह रोग को फैलाने में भाग लेते हैं।

(४) कई अविवाहित लड़कियां जिन्हों ने कभी किसी रोगी के साथ संयोग किया हो इस रोग से ग्रस्त हो जाती हैं, और फिर वो छोटे २ बच्चों को जो करीबन १० साल की आयु के होते

हैं अपने साथ संयोग करने के लिए उत्तेजित करती हैं और इस प्रकार रोग फैलाती हैं। इस तरह छोटे २ बच्चों में भी रोग का फैलना सर्वथा संभव है। पर क्रियात्मिक दृष्टि से इस तरह रोग का फैलना बहुत कम अवस्थाओं में होता है। यहाँ पर प्रसंगवश यह लिख देना आवश्यक है कि रोग से ग्रस्त व्यक्तियों में विषय वासना की लालसा बढ़ी हुई होती है। इस बढ़ी हुई विषय-वासना के क्या कारण होते हैं इनकी विवेचना करना इस पुस्तक में इच्छित नहीं है।

(५) उपरोक्त सब हालतों में यदि संक्रामक व्यक्ति रोग की प्रथमावस्था में हो तो संक्रमण तभी हो सकता है जब कि आतशक के फोड़े की लाग या सूज कर फटी हुई वंक्षणस्थ लसीका ग्रन्थियों की पाक सीधी दूसरे व्यक्ति के शरीर पर लगे। अर्थात् इन हालतों में इस पाक या लाग के दूसरे व्यक्ति तक पहुंचने में किसी और वस्तु के या व्यक्ति के मध्यस्थानीय होने की अपेक्षा नहीं होती है! परन्तु ये लाग तब भी लग सकती है जब कि स्कूलों वगैरह में लड़कियां किसी रोगी लड़की के तौलिए से अपने गुप्त अंगों को साफ करें या पोंछें। यदि गुप्त अंगों को न साफ करें पर शरीर के अन्य अंगों को साफ करें जैसे होंठ इत्यादि तो प्राथमिक फोड़ा गुप्त अंगों में न निकल कर होंठ इत्यादि पर निकलता है। संक्रमण इस अवस्था में भी हो जाता है केवल प्राथमिक फोड़े के निकलने की जगह भिन्न होती है। बिलकुल इसी तरह लड़कों के इकट्ठे होने की जगहों में भी तौलिए उपर्ने वगैरह रोगी व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्ति में रोग फैलाने का कारण हो सकते हैं।

✓(६) Fellator (शिश्न चोषक) आदमी या Fellatrice (शिश्न-चोषिका) औरतें इस रोग के रोगी से रोग ले सकते हैं। और प्राथमिक फोड़ा होंठों पर या जीभ पर निकलता है।

(७) आतशक का प्राथमिक फोड़ा पहिले बताया जा चुका है, कि भग या शिश्न पर निकलता है। पर ये फोड़ा हो सकता है कि विशेष अवस्थाओं में उन उत्पादक अंगों पर न निकल कर शरीर के अन्य स्थानों पर प्रगट होवे। ऐसे फोड़े को अन्य-स्थानस्थ (Extra-genital) प्राथमिक फोड़ा कहते हैं। ये भी प्रथमावस्था का फोड़ा होता है और रोग को फैला सकता है।

ये होंठ, जीभ या स्तन पर हुआ २ अन्य-स्थानस्थ-प्राथमिक फोड़ा 'चुम्बन' द्वारा आतशक को फैला सकता है।

✓(८) कई धायें (wet nurses) को यह रोग होता है। और उनको जो पालने के वास्ते बच्चा दिया जाता है वह भी इस रोग का शिकार हो जाता है। कई बार आतशक का फोड़ा थनों पर होता है। और थन से दूध चूसते हुए बच्चा रोग का शिकार बनता है। या आतशक का फोड़ा उस धाय के होंठों पर होता है और वो चूम कर बच्चे को इस रोग का शिकार बना देती है। इस लिए जिस धाय या दाई या नौकरानी को मुकर्रर करो तो याद रक्खो कि वो संक्रमण फैलाने में किसी तरह भी सशक्त नहीं होनी चाहिए।

(ख) ऊपर बताया जा चुका है कि रोग का रोगी दूसरी अवस्था में रोग को फैलाने में सशक्त होता है। तो ऐसी हालत में जब रोगी की त्वचा पर या श्लेष्म-कलाओं पर स्फोट निकले

हुए हों तो उसके सम्पर्क में (आलिंगन या चुम्बन आदि द्वारा) नहीं आना चाहिए। अनैच्छिक तौर पर आकस्मिक रूप से भी संसर्ग में नहीं आना चाहिए। जो लोग संसर्ग में आते हैं रोग का शिकार बन जाते हैं।

(१) प्रथमावस्था में रोग के अन्यान्य फैलने के तरीकों में से बहुत से तरीके द्वितीयावस्था के स्फोटों से भी इस रोग को फैला सकते हैं।

(२) यदि चिकित्सक रोगी की, सावधान होकर, परीक्षा न करे तो हो सकता है कि उससे रोग की छूत ले लेवे। सो ऐसी हालत में अकसर रोग का पहिला फोड़ा अंगुलियों पर निकलता है। चिकित्सकों को विशेष कर बड़ा सावधान होना चाहिए। क्योंकि वो इस रोग के भयंकर परिणामों, और इसकी लम्बी चिकित्सा से भली प्रकार परिचित होते हैं।

(३) द्वितीयावस्था में रोगी मनुष्यों की लाला, रोग के जीवाणुओं से भरपूर होती है। इसलिए इन द्वितीयावस्था के मनुष्यों के साथ मिल कर एक थाली में खाना एक लोटे से पानी पीना, और चुम्बन आदि सब वर्ज्य हैं। नहीं तो, रोग की सौगात लेकर बुरे परिणाम भोगने पड़ते हैं।

(४) इस अवस्था में रोगी स्त्री और मनुष्यों के मुखों की श्लेष्मकलाओं में भी स्फोट निकलते हैं। यदि कोई रोगी पुरुष Fellator हो या कोई रोगी औरत Fellatrice हो तो इस रोग को फैला सकती है।

(५) द्वितीयावस्था के गुद-स्फोटों (Condylomata) से ये रोग बहुत फैलता है। ऊपर बताया ही जा चुका है कि जो

लोग गुद मैथुन करते हैं वो इस प्रकार रोग को प्राप्त कर सकते हैं।

(६) चाहिए तो ये कि जो पुरुष इस रोग से आक्रान्त हो जाएँ वो जहां तक हो सके रोग को न फैलने देने में सहायक हों। परन्तु क्योंकि ये पुरुष दुष्ट पुरुष होते हैं, इनका विचार भी बुरा ही होता है। ये उलटा आक्रान्त हुए २ इस बात में खुश होते हैं कि जितने आदमी अधिक हो सकें इस रोग से आक्रान्त हो जावें। अन्य कई देशों में राज्य-नियमों द्वारा इन रोगियों की सूचना देनी प्रत्येक चिकित्सक को लाज़मी होती है, और इन रोगियों पर राज्य की ओर से प्रतिबन्ध लगाए जाते हैं; ताकि ये खल पुरुष दण्ड के डर से अपनी बुरी हरकतों से बाज़ आजावें। परन्तु भारत में जहां कि प्रतिबन्ध के राजनियम नहीं हैं, जनता को ऐसे आदमियों से अधिक सचेत रहना चाहिए। ऐसे आदमी जान बूझ कर रोग की संक्रामक अवस्था में सामाजिक कार्यों में—जैसे सभाओं आदि में जाना, सिनेमा होटलों आदि में जाना इत्यादि—पहिले से भी अधिक भाग लेने लगते है। ये लोग बड़े बदनीयत होते हैं। इनसे जनता को बहुत सावधान रहना चाहिए।

(ग) रोग की तृतीयावस्था में ये रोग न के बराबर फैलता है, क्योंकि फिरंगार्बुदों (Gummata) में रोग के जीवाणु बहुत विरल संख्या में होते हैं। न के बराबर, कहने से ये मतलब है कि रोग के फैलने की आशंका थोड़ी न थोड़ी हद तक जरूर होती है, सर्वथा दूर नहीं हुई होती।

(घ) ऊपर बताया जा चुका है कि जब तक रोगी के रक्त की वासर-मैन परीक्षा ऋण चिन्ह वाली रहे तब तक उसे क्रियात्मिक दृष्टि से रोग से मुक्त नहीं माना जाता है। ऐसे रोगियों के रक्त का Transfusion (रक्त-वितरण) नहीं करना चाहिए। ऋण-चिन्ह वाला रक्त स्वस्थ पुरुष के शरीर में जाकर उसे भी रोग का शिकार बना देगा। सो ऐसे रोगियों का खून या रक्तवारि (Serum) कुछ भी चिकित्सा के तौर पर अन्य रोगियों के शरीर में प्रविष्ट नहीं करना चाहिए।

(ङ) इन रोगियों का वातिकद्रव (Cerebro-spinal fluid) भी बहुधा ऋण चिन्ह युक्त होता है। तुरीयावस्था में जिन रोगियों को वातिक-फिरंग हो जाता है उन में वातिकद्रव और भी अधिक (प्रति शतक) संख्या में ऋण चिन्ह वाला होता है। सो अगर किसी हालत में किसी रोगी को वातिकद्रव चिकित्सा के रूप में देने की आवश्यकता हो तो इन पुरुषों का वातिकद्रव जो फिरंग के रोगी हों कदापि न देना चाहिए। हो सकता है कि इस तरह रोग फैले।

(च) फिरंग के रोगी अपनी सन्तति को भी इस रोग से आक्रान्त कर देते हैं। ऐसे सहज-फिरंग से आक्रान्त शिशुओं का वर्णन आगे चल कर किया जायगा। और वो किन किन अवस्थाओं में सहज-फिरंग से आक्रान्त होते हैं इसका विचार भी ९ वें अध्याय में किया जायगा। यहाँ पर सिर्फ इतना कह देना ही पर्याप्त है कि उन मनुष्यों या धायों का जो सहज फिरंगियों को पालती हैं, फिरंग रोगा-

क्रान्त हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है। कई बार सहज-फिरंगी को अगर उसकी मां पाले तो रोग से आक्रान्त नहीं होती है पर उसकी धाय हो जाती है। इसे "कोलेस्‌ ला" कहते हैं। इसका विचार ६ वें अध्याय में होगा।

(छ) वर्तमान-ज्ञान के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मनुष्य के अतिरिक्त कोई भी प्राणी संसार में स्वाभाविक तौर पर इस रोग से ग्रस्त हुए २ नहीं पाये जाते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो कहना पड़ेगा कि सिफलिस केवल मनुष्य-संसार का रोग है। परन्तु कृत्रिम-विधियों से आक्रान्त किए जाने पर (विकास-वाद के सिद्धान्त के अनुसार) विकास की श्रेणी में उन्नत सिद्ध हुए २ कई प्रकार के बन्दर इस रोग के रोगी बनाए जा सकते हैं।

The majority of animals are completely refractory to infection by the Treponema pallidum, and only in the higher apes, particularly the chipanzee, is a disease similar to human syphilis produced.

J. W. Bigger (Hand book of bacteriology) 1933.

इससे स्वयं सिद्ध है कि ये रोग अन्य प्राणियों द्वारा मनुष्य को नहीं हो सकता है।

(ज) कई मनुष्य जो इस रोग के रोगी होते हैं जब चिकित्सक के पास आते हैं तो विचित्र २ इतिवृत्त देते हैं। कोई

कहता है कि गरमी हो गई है। मछली खाई थी सो गरमी से इन्द्री पर फोड़ा निकल आया है। कोई कहता है कि बीमार आदमी के पेशाब पर पेशाब किया था तो यह बीमारी हो गई है। ये सब इतिवृत्त झूठे इतिवृत्त होते हैं। विशेष कर वो पुरुष जो कि समाज में माननीय होते हैं जब अपनी विषय-वासना की लगाम कस कर नहीं रख सकते और इस बीमारी का शिकार हो जाते हैं तो अपने आपको दुर्व्यवहार के धब्बे से दूर रखने के लिए ऐसे २ इतिवृत्त घड़ कर लाते है। एक ओर तो उनकी इच्छा यह होती है कि वो रोग का ठीक २ इलाज करवाएँ और दूसरी ओर वो ये चाहते हैं कि चिकित्सक को वो अपना बीमारी का ठीक ठीक इतिवृत्त भी न दें। पर चिकित्सक यदि चतुर हो तो इन सब बातों को ताड़ जाता है। तरीके से रोगी का विश्वास अपने में उत्पन्न करके सब आवश्यक बातें मालूम कर लेता है। कभी २ रोगी को धमका कर भी ठीक २ इतिवृत्त मालूम करना पड़ता है। कभी २ अपने क्रियाशाला-रोग विनिश्चय के चातुर्य पर भी आश्रित रहना पड़ता है। कई बीमार रोग से आक्रान्त नहीं भी होते पर उनके दिल में किसी छिपी हुई बात के कारण एक झूठा ख्याल ही समाया हुआ होता है कि वो रोग से आक्रान्त हैं। इन सब बातों के विषय में लिखने का स्थान यह छोटी सी पुस्तक नहीं है। इसलिए इस अध्याय के अन्त में मैं फिर ये दुहराता हूं कि चिकित्सक को रोग के निश्चय के लिए अपनी बुद्धि, चातुर्य, और

विवेचना का खूब प्रयोग करना चाहिए। रोगी का कौनसा इतिवृत्त विश्वसनीय है और कौन सा नहीं है, खूब जांचना चाहिए। याद रक्खो कि, रोगी का आक्रमण, संक्रमण के स्रोत के बिना त्रिलोक में असम्भव है!

—:o:—

पाँचवाँ अध्याय

सिफलिस या आतशक की प्रथमावस्था

ये रोग एक व्यापी रोग है अर्थात् सारे शरीर में व्याप्त होता है परन्तु इस का प्रारम्भ स्थानिक रूप में होता है। व्याप्त अवस्था का प्रत्यक्ष प्रमाण ये है कि स्फोट शरीर की सारी त्वचा पर प्रकट होते हैं।

इस के फोड़े को अंग्रेज़ी में (Hard chancre) कहते हैं। इस फोड़े का वर्णन इसी अध्याय में आगे चल कर किया जायगा। फोड़ा जैसा कि पहिले बताया गया है १४ दिन से ले कर दो महीने के अन्दर निकलता है। अर्थात् छूत के बाद इतना समय गुज़रने पर निकलता है। अकसर २१ से २५ दिन में अधिकांश रोगियों में प्रकट होता है। इस समय को रोग का प्रदर्शन-समय (Incubation Period) कहा जाता है। कई लोग इसे प्रथम प्रदर्शन समय (First incubation period) कहते हैं। और द्वितीयावस्था के प्रकट होने से पहिले के समय को द्वितीय-प्रदर्शन समय (Second incubation period) कहते हैं।

फोड़ा कहाँ निकलता है ? अधिकांश रोगियों में छूत संयोग द्वारा होती है। और फोड़ा भी गुह्येन्द्रियोंपर निकलता है। मनुष्य में शिश्न पर या इस के आस पास और स्त्रियों में भग में

या इस के आस पास । पर इन स्थानों से अतिरिक्त, अन्य स्थानों पर भी फोड़ा प्रकट हो सकता है । जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया है, इस रोग के फैलने के कई प्रकार हैं, सो उन के अनुसार प्राथमिक स्फोट का उद्गमन भी भिन्न २ स्थानों पर होता है ।

इस तरह स्थानों की दृष्टि से Chancre दो प्रकार के पुकारे जाते हैं । जननेन्द्रियक (Genital) और अन्यस्थानस्थ (Extra-genital).

Genital chancres—जननेन्द्रियों पर भी भिन्न २ स्थानों पर निकलते हैं, सब से अधिक अग्रचर्म की श्लेष्म-कला पर होते हैं, इन के निकलने का क्रमवार ब्यौरा नीचे दिया जाता है । मनुष्यों में निम्न ८ स्थानों पर प्रकट होते हैं । सब से अधिक पहिले स्थान पर और सब से कम अन्तिम स्थान पर प्रकट होते हैं ।

(१) अग्रचर्म की श्लेष्मकला ।
(२) अग्रचर्म का मुख ।
(३) ध्वजा के नीचे की ओर की सीवन ।
(४) शिश्न की त्वचा ।
(५) शिश्न ध्वजा (Glans penis.)
(६) शिश्न प्रणाली का मुख (Meatus urinarius)
(७) अण्डकोश.
(८) मूत्र-प्रणाली विशेष कर Fossa navicularis. ये Fossa शिश्न के मुख से थोड़ी दूर पर ही होता है ।

स्त्रियों में निम्नक्रम से पाए जाते हैं । सब से अधिक प्रथम

स्थान पर, और सब से कम अन्तिम स्थान पर—

(१) वृहद् या अल्प भगौष्ट (Labia majora or minora.)

(२) Fourchette—जहाँ पर भग का अक्षि सदृश चीर आगे और पीछे मिलता है, अर्थात् जहां पर Labia majora और minora आगे और पीछे मिलते हैं, वहाँ छोटा सा श्लेष्म-कला का पुल सा बना होता है, इसे ही Fourchette के नाम से पुकारा जाता है। (उदाहरणार्थ आप अपनी अंगुलियों को चौड़ा कर देखो तो दो अंगुलियों के बीच फैली हुई झिल्ली सी होती है। इसी प्रकार की फैली हुई झिल्ली उपरोक्त प्रदेशों पर Faurchette के नाम से पुकारी जाती है।)

(३) गर्भाशय ग्रीवा।

(४) Clitoris या छोला। (Clitoris को लोग अकसर छोले के नाम से पुकारते हैं, क्योंकि इसकी शकल चने के दाने की तरह की होती है) ।

(५) योनि मुख।

(६) मूत्र प्रणाली का मुख।

अन्य स्थानस्थ—निम्न स्थानों में पाए जाते हैं।

(१) ओष्ट (lips)

(२) Tonsils (कण्ठ-मुखस्थ लसीकाग्रन्थियाँ) ।

(३) जिह्वा।

(४) अंगुलियाँ (हाथों की) ।

(५) स्तन।

इन में होठों पर सब से अधिक होते हैं और स्तनों पर सब से कम।

Chancres की संख्या—अधिकांश पुरुषों में ये एकाकी होता है। परन्तु कई मनुष्यों में एकसे अधिक संख्या में भी देखे गए हैं। स्त्रियों में भग में प्राय: बहु-संख्या में पाए जाते हैं।

Chancres की विशेषताएँ—यों तो स्वयं स्पष्ट है कि अगर Chancres अग्रचर्म पर होगा तो हो सकता है कि अग्र चर्म का मुख सूज जाए और सामने का छेद छोटा होने से अग्रचर्म (Prepuce) पीछे न हो सके। और कई वार यदि ये Chancre अग्र चर्म के बाहर की पृष्ट पर होगा तो हो सकता है कि अग्र चर्म शुरु से ही बाहर की ओर उलटा-हुआ होवे। और ध्वजा को (डाड़ी को) ढकने में असफल हो। सो इस प्रकार Chancre, जगह के अनुसार शिश्न के भिन्न २ प्रकार के रूप प्रगट करता है। यदि Chancre सूत्र प्रणाली के मुख पर होगा तो ध्वजा का अग्रभाग सारा का सारा सूजा हुआ होगा।

इसके अतिरिक्त स्त्रियों में फोड़ा बहुधा होता ही नहीं है। भगोष्ठों की सोज ही होकर रह जाती है। वो सूजे हुए और कठोर होकर ही फिर अच्छे हो जाते हैं।

यहाँ पर एक Characteristic Chancre (विशिष्ट प्राथमिक स्फोट) को दृष्टि में रख कर वर्णन किया जायगा। पाठकों को यह स्मरण रहना चाहिये कि इस रोग में सर्वदा इसी प्रकार का Chancre उन्हें नहीं उपलब्ध होगा। उन्हें कई Chancre देखने को मिलेंगे जो बहुत कुछ भिन्नता दर्शाते होंगे।

इस Characteristic chancre को Hunterian (हन्टेरियन) Chancre भी कहा जाता है। इस की परीक्षा करते हुए निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(१) इसके किनारे, इसके किनारों से बनी शकल।

(२) इसका आधार।

(३) इसका फर्श (Floor)।

Floor और आधार में भेद होता है। जिस तरह कमरे की बुनियाद और कमरे के फर्श दोनों में बहुत भेद है।

(४) इसका मवाद (५) इसके चारों ओर का प्रदेश।

(६) इसमें दर्द होती है कि नहीं ?

Chancre के चारों ओर का प्रदेश कुछ लाल होता है। मानो कि फोड़े ने एक लाल सा छल्ला पहिना हुआ हो। फोड़े के किनारे सख्त और ज्वालामुखी के मुख की तरह उभरे हुए होते हैं। ये किनारे अन्दर (अर्थात् फोड़े की पृष्ट की ओर) और बाहर (अर्थात् स्वस्थ पृष्ठ की ओर) दोनों पृष्ठों की ओर ढलवान होते हैं। चारों ओर के किनारे की शकल अण्डाकार या गोल सी होती है। फोड़े का फर्श साफ और चमकीला बिना किसी मवाद का होता है। या तो शुष्क होता है या इसमें से पतला Serum (रक्त वारि) रिस रहा होता है। और अगर फोड़े को चिकित्सक अपने हाथ की तर्जनी और अँगुष्ठ में पकड़ कर देखे तो उसे अनुभव होगा कि आधार भी सख्त होता है। ये कभी कभी इतना सख्त होता है कि तरुणास्थि का सा अनुभव देता है। दबाने से इसमें से साफ serum (रक्तवारि) निकलता है।

इस में दर्द या शोथ (Inflammation) नहीं होती है। यदि पूयजनक जीवाणुओं का आक्रमण हो गया हो तो दर्द और शोथ दोनों उपस्थित हो सकते हैं ।

अकसर रोगियों को अगर अग्र चर्म पीछे करने को कहा जाय तो ऐसा करते हुए उनका सारे का सारा अग्र चर्म एक दम पीछे उलट जाता है (Indurated collar)। ये बात यह साबत करती है कि कठिनता या Inflammation बहुत है। और ये कठिनता आतशक के फोड़े की विशेषता है ।

ऊपर बताया गया है, कि फोड़े को भींच कर इसमें से Serum निकाला जा सकता है। इस Serum में रोग के जीवाणु मिलते हैं। इन जीवाणुओं को Dark illumination (तमोप्रकाशन) द्वारा या रंगने के तरीकों द्वारा सूक्ष्म दर्शक यन्त्र के नीचे देखा जा सकता है ।

यहाँ पर ये स्मरण रहे कि बीमारी छूत से फैलने वाली है इसलिए चिकित्सक को पहिले अपने हाथ रबड़ के या और किसी चीज के दस्ताने से सुरक्षित करके फिर रोगी के अंगों को छूना चाहिए। नहीं तो नहीं ।

लसीका ग्रन्थियां—प्रथमावस्था में उपरोक्त फोड़े के साथ लसीका ग्रन्थियां भी फूल जाती हैं । इन फूली हुई लसीका ग्रन्थियों की परीक्षा का चिकित्सक को ध्यान रखना चाहिए। कई लोग जब पैर में कोई चोट लग जाती है और उस से वंक्षण (Groin) में लसीका ग्रन्थि फूल जाती हैं तो कहते हैं कि गिल्टी होगई है। आतशक में गिल्टियां ऐसी नहीं होती जैसी कि चोटों में होती हैं। चोटों की गिल्टियां दबाने पर दर्द कर-

ती हैं। अर्थात् स्पर्शाक्षम (Tender) होती हैं, क्योंकि पूय जनक जीवाणु गिल्टियों को स्पर्शाक्षम अवस्था मे सुजाते हैं। पर आतशक का जीवाणु सिर्फ इन्हें सुजाता है, दर्द—युक्त नहीं करता है। इन गिल्टियों को यदि हाथों की अंगुलियों से टटोला जाय तो ये फूली हुई इंडिया रबर की न्याईं लचकीली और दर्द रहित होती हैं। पर अगर सिफलिस का Chancre पूय-जनक जीवाणुओं से भी आक्रान्त हो जाय तो ये गिल्टियां साथ साथ दर्द भी करने लगती हैं। तब इनके ऊपर की त्वचा लाल और गरम हो जाती है। और कभी कभी ये फूट भी पड़ती है। यदि केवलमात्र आतशक की संक्रामता ही रहे तो ये ग्रन्थियां न कभी लाल और गरम होती हैं और न कभी फूटती हैं।

शिश्न की लसीका वाहिनियों का प्रवाह दोनों ओर की वंक्षणस्थ लसीका ग्रन्थियों की ओर होता है। इस लिए हमेशा दोनों ओर की लसीका-ग्रन्थियों की परीक्षा करनी चाहिए। हो सकता है कि शिश्न पर इसके दाईं ओर फोड़ा हो, पर मुख्यतः बाईं ओर की वंक्षणस्थ लसीका ग्रन्थियां फूली हुई होवें।

ग्रंथियों को विद्ध करके अगर रक्त निकाला जाय तो इसमें भी, सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से देखने पर, आतशक के जीवाणु पाए जाते हैं।

छठा अध्याय

द्वितीयावस्था

प्रथमावस्था का फोड़ा अच्छा हो जाता है। वंक्षण की लसीका ग्रन्थियों की सोज भी कम हो जाती है। पर ६ हफ्ते बाद सारे शरीर पर लाल लाल विस्फोट (Rashes) से निकल पड़ते हैं। अकसर (पहिला अवस्था के फोड़े के बाद) ६ हफ्ते से लेकर दो महीने गुजरने तक दूसरी अवस्था आजाती है। और इस समय को इस रोग का द्वितीय प्रदर्शन समय कहते हैं। पर ये समय की अवधि बहुधा अतिक्रान्त भी हो जाता है। दो से अधिक महीने भी लग जाते हैं।

प्रथमावस्था में तो फोड़े की जगह से रोग के जीवाणु प्रवेश करते हैं और प्रवेश करने की जगह पर तन्तुओं का नाश करके फोड़े की शकल पैदा कर देते हैं। पर दूसरी अवस्था में इस फोड़े की जगह से वो सारे शरीर में फैल जाते हैं और सारे शरीर में अपनी पैदा की हुई विषों का भी संचार कर देते हैं। इन बातों का परिणामरूप द्वितीयावस्था प्रगट होती है। इस अवस्था में निम्नप्रकार के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। इन लक्षणों को तीन हिस्सों में बांट दिया गया है। एक तो वो जो हमेशा पाए जाते हैं। दूसरे वो जो सर्व व्यापी होते हैं। पर कभी कभी मिलते हैं। तीसरे वो जो स्थानिक होते हैं और कभी २ मिलते हैं।

(१) द्वितीयावस्था के मुख्य लक्षण ।

(२) व्यापी लक्षण ।

(३) स्थानिक लक्षण ।

मुख्य लक्षण तीन होते हैं-(१) त्वचा के स्फोट, (२) श्लेष्म कलाओं के स्फोट (३) बालों का झड़ना ।

त्वचा के स्फोटों में निम्न विशेषताएँ पाई जाती हैं । (१) इनके निकलने का समय (Chancre) के निकलने के ६ हफ्ते या दो महीने बाद होता है।

(२) इन का प्रसार—धीरे २ होता है। इस बात को इस तरह देख सकते हैं कि जब ये धड़ पर सूख रही होती हैं तो ऊर्ध्व प्रशाखाओं (Upper limbs) पर हरी हो रही होती हैं।

(३) पहिले धड़ पर निकलती हैं और फिर प्रशाखाओं पर।

(४) इन का रंग ताम्बे की तरह का लाल होता है । पर बाद में सूखने पर भूरा सा हो जाता है । ये स्मरण रहे कि कई वार स्फोट गहरे गुलाबी भी होते हैं।

(५) इनके गोल के गोल (अर्थात् समूह) निकलते हैं जो घेरे में वृत्ताकार से होते हैं।

(६) यदि इन स्फोटों को तर्जनी और अंगूठे में लेकर (याद रहे कि छूत की बीमारी है, हाथों पर दस्ताने होने चाहियें) दबाया जाय तो ये कठोर कठोर से अनुभव होते हैं। त्वचा में भी कुछ गहराई पर अनुभव होते हैं। ऊपरी पृष्ट पर नहीं ।

(७) बहुरूपिता—सब स्फोट एक जैसे नहीं होते हैं, शरीर के

स्थान-भेद से इनकी शकल में भी भेद आ जाता है। धड़ पर चपटे चपटे होते हैं। पर गुदा के चारों ओर नमी वाली जगहमें (Condylomata) के रूप में होते हैं। (Condylomata) का वर्णन आगे चल कर किया जायगा (देखो पृष्ठ ४०)।

(८) इनमें दर्द भी नहीं होती है। और इन पर खाज भी नहीं होती है। रोगी से इन दोनों बातों का पूछना बहुत ज़रूरी है।

(९) सम रूप से होते हैं। समरूपता कुछ अस्पष्ट सी होती है। इसी लिए अंग्रेजी पुस्तकों में यह लिखा गया है कि ये स्फोट (More or less symmetrical) होते हैं।

(१०) यदि इन स्फोटों को खुर्च कर के, दबाकर इनमें से रक्त वारि निकाला जाय और उसे सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र द्वारा देखा जाय तो फिरंग के जीवाणु दिखाई देते हैं।

(११) इस अवस्था में वासर मैन परीक्षा + होती है। (देखो १० वाँ अध्याय)।

इस से पहिले कि इन स्फोटों के विषय में टीका टिप्पणी की जाय त्वचा के छोटे छोटे २ उद्गमों या पिटिकाओं के विषय में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है।

(१) यदि कोई पिटिका ऐसी हो जो त्वचा की सतह से उभरी हुई न हो (अर्थात् त्वचा के साथ समवार हो) और त्वचा को दबाने पर मिट जाती हो तो उसे (Macule) (मैक्यूल) कहते हैं।

(२) यदि कोई पिटिका (या उद्गम) जो त्वचा की सतह से तो उभरी हुई हो पर उसमें न पीप हो न पानी हो, न रक्त अर्थात

ठोस हो तो वह (Pappule) (पैप्यूल) कहलाती है।

(३) यदि इस में पानी जैसा पारदर्शक द्रव हो तो ये (Vesicle) (वेज़िकल) कहलाती है।

(४) यदि इस में पीप हो तो (Pustule) (पस्च्यूल) कहलाती है।

(५) अगर इसके सिरे पर नोक हो (और इसमें पीप भी हो) तो इसे और नाम दिया जाता है जिसका यहां उल्लेख करना अभीष्ट नहीं है। इस प्रकार की पिटिकाएं जवानी के शुरु में अकसर लोगों के मुखों पर निकलती हैं। इन्हें अंग्रेज़ी में (Acne) कहा जाता है। और हिन्दी में कई नामों से पुकारा जाता है। जैसे झाईं इत्यादि।

(क) आतशक में स्फोट अधिकांश में Macular Variety का—होता है। और इस के साथ अकसर और भी Varietis जैसे कि Pappular, Vesicular और Pustular भी देखने में आती हैं। (बहुरूपिता)। (Macular rash) को देखने के लिए रोगी के धड़ पर से सब कपड़े उतरवा देने चाहिये, और अच्छी रोशनी में ध्यान से शरीर की त्वचा को देखना चाहिये। बहुधा ये विस्फोट शुरु शुरू में सरसरी नज़र से देखने पर नज़र नहीं आते हैं।

(ख) कई रोगियों में Macular rash न निकल कर Pappular rash निकलती है। अगर Pappular rash निकलनी हो तो अधिक समय के बाद निकलती है। Macular rash ६ हफ्ते बाद निकलती है। Pappular rash तीन महीने बाद निकलती है। Pappules दो प्रकार के होते

हैं। चपटे और नोकदार। नोकदार pappuls वालों की जड़ों के साथ निकलते हैं। इस Rash के साथ बहुरूपिता अवश्य ही मिलती है। Pappules सख्त और छोटी २ गोलियों की तरह (Shotty) अनुभूत होते हैं। यही (Rash) कभी २, त्वचा पर से,छिलके छिलके से उतारती है। (Scaly) तब इसका शक Psoriasis त्वक् रोग से हो जाता है। पर बहुरूपिता इस बात को एक दम लय कर देती है। बहुरूपिता (Psoriasis) रोग में नहीं मिलती है।

(Pappular rash) यदि हाथों पर होवे तो तब भी इस पर से चमड़ी झड़ती है। यदि ये (Rash) नमी वाली जगहों में होवे जैसे कि सीवन प्रदेश (Perineum) कांखें (Axillae) भग (Vulva) दोनों नितम्बों के बीच (गुद चीर) और पैर की अंगुलियों के बीच तो ये (Sessile) (डण्डी रहित) या (Vegitating) (अंकुर रूप) सदण्डिक (Condylomata) का रूप धर लेती है।

Condylomata क्या होते हैं? इन का वर्णनात्मक चित्र बनाना बहुत कठिन है। देखने से आसानी से समझे जा सकते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं एक तो चपटे और फैले हुए, दूसरे बवासीर के मस्सों की तरह उभरे हुए। पर जो बवासीर के मस्से होते हैं वो सूजे हुए और दाख के दानों की तरह फूले हुए होते हैं। पर आतशक के उद्गम कुक्कुट की कलगी की तरह दोनों ओर से पिचके चपटे हुए और सख्त होते हैं। (नोट—Thrombosed Piles में बिल्कुल ऐसे भी मस्से मिल सकते हैं। इस लिए आतशक रोग विनिश्चय अन्य

लक्षण, इतिवृत्त आदि पर आश्रित होता है।) उपरोक्त दाखों और कुक्कुट की कलगी वाले भेद को भली प्रकार समझ लेना चाहिये।

चपटे Condylomata फैले हुए और अकसर गुदा के छिद्र के चारों ओर होते हैं। इन पर व्यासार्द्धों की तरह रेखाएं सी पड़ी हुई होती हैं। ये सख्त और त्वचा की सतह से उभरे हुए होते हैं। इन का आकार छोटा या बड़ा कई प्रकार का होता है।

दोनों प्रकार के Condylomata से पतला पतला पानी सा रिसता है और ये बहुत दुःखदाई होते हैं।

अधिकांश रोगियों में Macular rash देखने में आती है, उस से कम Pappular rash देखी जाती है। आगे वर्णन की जाने वाली Vesicular और Pustular rashes बहुत ही कम देखने में आती हैं पर इनका सर्वथा अभाव नहीं होता है।

Pappular rash जिसका कि वर्णन किया जा रहा है कई बार इतनी देर से निकलती हैं कि इसे Late secondary stage के (द्वितीयावस्था के उत्तर कालीन) लक्षणों में शुमार करना पड़ता है। ये तब समूहों में निकलती है। समूह शरीर के किसी भी भाग में मिल सकते हैं। इन समूहों में केन्द्र के Pappules बड़े २ और परिधि के क्रमशः छोटे होते हैं। ये सामूहिक Pappular rash प्रायः पीठ और नितम्बों पर मिलती है। होने का तो शरीर के किसी भी भाग में हो सकती है। समूह व्यास में १″ से ६″ तक होते हैं।

Pappular rash का एक और भी भेद है जिसे Squamous syphilide का नाम दिया जाता है। इस Rash के रोगी कम ही देखे जाते हैं। पर जिन रोगियों में इसका आविर्भाव होता है उनमें निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(ख) Squamous syphilide के स्फोट थोड़े और शरीर पर चीदा चीदा बिखरे होते हैं। पर हाथों और पैरों की तलियों पर अधिक होते। उद्गम स्थान त्वचा से कुछ उभरे हुए और चपटे होते हैं। प्रत्येक Papppule साधारण Papule से आकार में होता है। इसके सूखने पर इस पर से छिलके उतरते हैं। इसे Squamous (अर्थात् फर्श सी) Syhilide का नाम दिया गया है।

(ग) (घ) Vesicular और Pustular rashes भी देखने में आते हैं। पर जानो कि दुर्लभ ही हैं। इनका प्रदर्शन भी द्वितीयावस्था के उत्तर काल (Late secondary stage) में होता है।

Pustular rashes चार प्रकार की होती हैं (१) Follicular (२) Varioliform (३) Impetigiform (४) Rupia।

Follicular pustules बालों की जड़ों के साथ होते हैं।

Varioliform.—(Variola चेचक को कहते हैं) इस में Pustules का दाना पेट पर नाभि की तरह अन्दर को पिचका हुआ होता है। इसी लिए इन्हें अंग्रेज़ी में Umbilicated कहते हैं।

Impetigiform—Impetigo एक त्वक् रोग है उसमें जैसे Pustules मिलते हैं उसी तरह के Pustules इस रोग में मिले तो उन्हें Impetigiform कहते हैं। ये Pustules रोमावृत प्रदेशों पर जैसे खोपड़ी पर, विटप प्रदेश पर आदमियों की दाढ़ी मूंछ की जगह पर मिलते हैं।

Rupia—इसका निर्देश अंग्रेज़ी के निम्न वाक्य से किया जाता है—

Rupia is deep crustforming with the conical and characteristic limpet shell scabs.

तो आपने देखा कि रुपिया एक ऐसा Pustule है जिस पर, बड़ा सा खुरण्ड लगा होता है और खुरण्ड की शक्ल नोकदार limpet-shell की तरह की होती है। Limpet एक छोटे से जानवर का नाम होता है जो Mollusca की श्रेणी में आता है। घोंघे, कौड़ी वाले घोंघे, सीपी वाले घोंघे, और शंखों वाले घोंघे सब इसी Mollusca श्रेणी में गिने जाते हैं। और इन्हें Gasteoropods भी कहा जाता है। क्यों कि ये पेट के नीचे के एक—पेशी—वाले पैर से चलते हैं इन्हीं का एक Genus Patella कहलाता है जिसे अंग्रजी में Limpet कहते हैं। और उपरोक्त वाक्य में इसी Limpet के कोणाकृति shell से उस खुरण्ड की उपमा दी गई है।

(ङ) इस के बाद, स्फोटों का एक और भी भेद (Variety) है जो आतशक में मिलता है। दुर्लभ रोगियों में प्राप्त होता है और Late secondary stage में (द्वितीयावस्था के उत्तरकाल में) मिलता है। Late secondary

stage को दूसरे शब्दों में Early tertiary stage (तृतीयावस्था का पूर्व-प्रारम्भिककाल) भी पुकारा जाता है।

स्फोटों के इस भेद को (Variety को) आर्बुदिक या nodular कह कर पुकारते हैं, क्योंकि इस में छोटे २ अर्बुद से होते हैं। ये nodules या उभार गोल दायरे से बनाते हैं या यों कहिए कि तरंगाकृति रेखा में निकलते हैं। इसीलिए इन्हें Serpiginous (या सर्प गति वत् चलने वाले) कहा जाता है।

हो सकता है कि ये उभार बिल्कुल एक दूसरे से अलग २ रहें या किनारों पर एक दूसरे से मिल गए हों। ये सारी की सारी त्वचा की मोटाई को आक्रान्त कर लेते हैं। और इनके चारों ओर की त्वचा काफी दूर तक ४ इंच या ५ इंच तक के व्यास में सख्त हुई हुई होती है। Lupus (Tuberculosis का फोड़ा) की अपेक्षा ये अधिक शीघ्रता से बढ़ते हैं। अच्छे होने पर इनके अच्छे होने की जगह पर त्वचा का वर्ण अधिक गहरा हो जाता है (Pigmentation)। इनके Scars (अच्छे हुए २ स्फोटों के चिन्हों) को देखकर पुराने हुए २ Syphilitic nodules का पता एक दम लगाया जा सकता है। ये Scar उसी Serpiginous या Circular form में होते हैं।

अब त्वचा के स्फोटों के वर्णन के बाद द्वितीयावस्था के दूसरे मुख्य लक्षण, श्लेष्म कलाओं के स्फोटों का वर्णन किया जाता है।—

श्लेष्म-कलाओं के स्फोट—जिस समय रोगी की त्वचा पर

स्फोट निकल रहे होते हैं उसी समय मुख और गले की श्लेष्म कलाओं पर भी स्फोट निकलते हैं। इन्हें Mucous patches कहा जाता है। ये Pappules की शकल के होते हैं। श्लेष्म कला से उभरे हुए होते हैं और इनके चारों ओर की श्लेष्म कला कुछ लाल सी होती है। इनका रंग कुछ फीका गुलाबी पीला सा होता है। ये गालों के अन्दरले पासे, होंठों के अन्दर की ओर या सामने की ओर, मुखके कोनों पर, नरम तालु Soft palate पर, Fauces (कण्ठ मुख) पर, Tonsils (कण्ठ मुखस्थ पार्श्वीय लसीका ग्रन्थियों) पर, Uvula (गलकौवा या गलकाक) पर, जिह्वा पर—कहीं भी दिखाई देसकते हैं। इनमें दर्द नहीं होती है। पर मुख कोनों पर के स्फोटों में दर्द होने लग जाती है। चूंकि उन पर दारियां (चीर) पड़, जाती हैं और बाद में पूय-जनक जीवाणुओं का आक्रमण हो जाता है। ये Patches (स्फोट) स्पर्शानुभव से सख्त प्रतीत होते हैं।

यहाँ पर ये स्मरण रहे कि इनके निकलने से पूर्व, या अगर रोगी (Macular syphilide) की (Roseolar) अवस्था में हो तो गले और मुख की श्लेष्म कला भी (Congested) या गहरी लाल हो जाती है। इस हालत में Soft palate (कोमल तालु) भी Congested (रक्त से भरपूर) हो जाता है। पर Hard palate (कठोर तालु) पर Congestion बिलकुल नहीं होती है। इस समय यदि रोगी के मुख में कोमल तालु को देखें तो वो Hard palate (कठोर तालु) की अपेक्षा बहुत लाल होता है। और दोनों के बीच एक स्पष्ट रेखा होती

है। इस लक्षण को अवश्य देखना चाहिए।

उपरोक्त पैरा में Macular syphilide की Roseolar अवस्था, ये लिखा गया है। इस से मतलब ये है कि द्वितीयावस्था में जब Macular rashes निकली हुई हों और वो गहरे गुलाबी रंग की हों—देखो पृष्ट संख्या नं० ३७ त्वचा के स्फोटों का वर्णन संख्या (४)—ये स्मरण रहे कि कई वार स्फोट गहरे गुलाबी भी होते हैं'।

Soft palate (कोमल तालु) पर जो Patches (स्फोट) निकलते हैं वो खास प्रकार के होते हैं। उनकी विशेषता को दृष्टि में रखते हुए उन्हें Snail track (घोंघा-मार्ग) का नाम दिया गया है। जिस तरह घोंघे के चलने से (घोंघा-जो पीठ पर छोटे से शंख को लेकर चलता है) रास्ता बन जाता है, ये Patches भी उसी रास्ते-की-सा-शकल में होते हैं।

Congestion के बाद बहुधा व्रण बन जाते हैं और फिर पूय जनक जीवाणुओं का आक्रमण हो जाता है।

गले और मुख के इलावा श्लेष्मकलाओं के स्फोट गुदा के मुख और भग में भी देखने में आते हैं। यह जगहें भी श्लेष्मकला से आवृत होती है। इन श्लेष्मकलाओं में भी चपटे उभरे हुए Pappule से निकलते हैं। पर स्थानभेद के कारण (नमी होने की वजह से) ये चपटे फैले हुए सख्त, गीले और कई वार दोनों ओर से पिचके हुए मस्सों की सी शकल के और रंग में सफेद भूरे से होते हैं। क्योंकि इस स्थान में नमी होती है। अतः उपरोक्त प्रकार के विस्फोट मिलते हैं। यही Condylomata कहलाते हैं सो Condylomata (इनका पहिले भी वर्णन

किया जा चुका है।) त्वचा और श्लेष्म कला दोनों के हो सकते हैं। पहिले त्वचा के Condylomata का वर्णन किया गया था। ये श्लेष्म कलाओं के Condylomata भी बिल्कुल वैसे ही होते हैं सो Condylomata का वही वर्णन यहां पर भी लागू समझना चाहिए।

द्वितीयावस्था के मुख्य-लक्षणों में तीसरा लक्षण-बालों का झड़ना है—गञ्जा होना—

त्वचा—के स्फोटों के निकलने के बाद ही रोगी यह भी अनुभव करने लगता है कि उसके सिर से बाल झड़ने लग गए हैं। मनुष्यों में ये लक्षण-किसी विशेष व्याकुलता का कारण नहीं होता है। पर औरतों में तो इस से बहुत व्याकुलता पैदा होती है। उन्हें बहुत फ़िकर होता है।

झड़ने से पहिले बाल Stiff (खरे या रूक्ष), चमक-रहित शुष्क और पतले हो जाते हैं। हो सकता है कि सारे सिर से व्याप्त रूप में बाल झड़ें और पहले जैसे घने न रहें। इसके इलावा यह भी हो सकता है कि अनियमित रूप में गुच्छों में बाल झड़ जांय। सारी की सारी खोपड़ी कभी गञ्जी नहीं होती है। पर दुर्लभ रोगियों में सारी खोपड़ी भी गञ्जी होनी सम्भव है।

व्यापी लक्षण—मुख्य लक्षणों के बाद अब कभी कभी मिलने वाले व्यापी लक्षणों का विचार किया जाता है। ये निम्न हैं—

(१) Malaise या तबीयत का मचलना!

(२) ज्वर (Fever).

(३) पाण्डुता (Anaemia).

ये लक्षण स्फोट निकलने से कुछ पहिले और स्फोट निकलते हुए प्रगट होते हैं।

(१) Malaise—तबीयत दुरुस्त नहीं होती है। रोगी काम करने पर जल्दी से थक जाता है। सुस्ती छाई रहती है। और भूख भी मारी जाती है।

(२) ज्वर—कई बीमारों को ज्वर होता है, कई बीमारों में होता ही नहीं है। १०१ फा० से अधिक नहीं होता है। बहुत हुआ तो १०२ फा० तक चला गया पर इससे अधिक कभी नहीं। दिन में चढ़ता है, फिर सवेरे उतर जाता है और इस तरह Intermittent variety का होता है। स्फोटों के निकलने के बाद धीरे धीरे जाता रहता है।

(३) Anaemia या पाण्डुता—Anaemia.

दो प्रकार के माने जाते हैं। प्राथमिक (Primary) और अपरज (Secondary)। अपरज किसी दूसरे कारण से होते हैं।

इस रोग में Secondary type का anaemia (अपरज पाण्डुता) होता है। स्फोटों के काल में बहुत होता है। रक्ताणु स्वस्थ पुरुष में ५० लाख प्रति क्यूबिक सैंटी मीटर होते हैं। इस में १० से ४० लाख तक रह जाते हैं। और हीमोग्लोबिन (रक्त का रञ्जक पदार्थ) घट कर ७०% ही रह जाता है

स्थानिक लक्षण—ये लक्षण बहुत कम देखने में आते हैं पर दुर्लभ नहीं हैं। इन द्वितीयावस्था के स्थानिक लक्षणों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जायगा।

(१) वात संस्थान (Nervous system) में।

(२) वृक्कों में।

(३) संधियों में (Joints में)

(४) आँखों में।

(५) लसीका ग्रन्थियाँ।

(१) वात संस्थान में—जिस वक्त त्वचा पर स्फोट निकलते हैं, उसी समय से मस्तिष्क और सुषुम्ना की आवरणकलाएँ भी आक्रान्त होनी प्रारम्भ हो जाती हैं। ये आक्रमण बहुत हलका होता है। इसके कारण केवल सिरदर्द ही होता है। और कोई लक्षण प्रगट नहीं होता है। सिरदर्द अकसर रात को होती है। रोगी कहता है कि दोनों ओर के शंख-प्रदेशों में (Throbbing) दर्द होती है। और या वो कहता है कि शिर के पिछले हिस्से में Dull (मट्ठी २) दर्द होती है। कई वार ये दर्द दिन में भी होती है, पर रात को अधिक हो जाती है।

(२) वृक्कों में—आतशक के रोगियों को मामूली एल्ब्युमिन्यूरिया (एल्ब्यूमिन मेह) Albuminuria भी होता है, जो कि आतशक की विषों के वृक्कों पर असर से होता है। किसी रोगी में ये कहना कि एल्ब्यूमिन-मेह आतशक के कारण है या नहीं बहुत कठिन होता है। यदि Albuminuria हो तो आतशक की चिकित्सा बहुत सावधानी से करनी चाहिए। यदि ये एल्ब्यूमिन-मेह आतशक के कारण हो तो इस रोग का (आतशक का) इलाज करने से वो शीघ्र ही दूर हो जाता है। यदि किसी और कारण से हो तो दूर नहीं होता है। यदि दूर न हो तो आतशक की चिकित्सा में और भी सावधान हो

आना चाहिए। आतशक की चिकित्सा जिन पदार्थों से की जाती है वो सब वृक्कों के लिए नुकसान देने वाले होते हैं। पर सावधानी से चिकित्सा करने पर कोई उत्पात नहीं होता है।

(३) सन्धियों में—सन्धि-पीड़ा या Arthralgia—ये लक्षण कई वार स्फोटों के निकलने से पहिले रोगी के मुख से सुनने में आता है। दर्द कई जोड़ों में एक साथ होता है। ये जोड़ अकसर घुटनों, गिट्टों, कलाइयों, कोहनी, और कन्धों के होते हैं। दर्द गति से अधिक हो जाती है।

यदि सन्धि की आवरण-कला की शोथ हो तो इसे Synovitis कहते हैं। ये चिरकालीन होती है। इस में जोड़ के अन्दर द्रव इकट्ठा हो जाता है (Effusion)। शोथ के चिन्ह नहीं होते हैं। दर्द नहीं होती है। आवरण-कला की शोथ (Synovitis) अकसर जानु सन्धि में होती है।

(४) आंखों में तीन रोग होते हैं—

(क) Iritis या Iridocyclitis (तारा मण्डल शोथ)

(ख) Optic neuritis (दृष्टि नाड़ी शोथ)

(ग) Choroiditis. (कृष्ण पटल शोथ)

इन रोगों का यहाँ पर वर्णन करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। इनके लिए कोई अक्षिरोगों की पुस्तक पढ़नी चाहिए। यहाँ इन अक्षिरोगों को इस पुस्तक में लिख कर समझाना भी बहुत कठिन है।

आंख के, पाश्चात्य मत के अनुसार तीन पटल होते हैं। एक बाह्य पटल Sclerotic coat, दूसरा मध्य पटल Vascular coat, तीसरा अन्तः पटल Retinal coat.

मध्य पटल तीन रचनाओं से बना हुआ है । Choroid, Ciliary muscle और Iris. Iris की शोथ को Iritis कहते हैं । Iris और ciliary muscle दोनों की शोथ को Iridocyclitis कहते हैं। Choroid की शोथ को Choroiditis कहते हैं । यदि अक्षि की दृष्टि-नाड़ी (Optic nerve) की शोथ हो जाय तो उसे Optic neuritis कहते हैं।

(५) सारे शरीर की लसीका ग्रन्थियाँ भी थोड़ी २ बड़ी हो जाती हैं । विशेषतः Epitrochlear glands जो कि कोहनी के पास बीच की ओर प्रगण्डास्थि (Humerus) के medial epicondyle (अन्तःअर्बुद) के ऊपर की ओर होते हैं। इन्हें हाथों की अंगुलियों से टटोल कर देखना चाहिए। ये आतशक के रोग की खासी गवाही देते हैं।

सातवाँ अध्याय

तृतीयावस्था

द्वितीय और तृतीय अवस्थाएँ प्रायः एक दूसरी के साथ मिल जाती है। अर्थात् एक अवस्था खतम होती है तो दूसरी शुरु हो जाती है। कई वार द्वितीयावस्था के लक्षण समाप्त होने से पहिले ही तृतीयावस्था के लक्षण प्रगट होने लग जाते हैं। और कई वार द्वितीयावस्था के बाद बहुत अधिक समय व्यतीत जाने के बाद अर्थात् कई सालों के बाद तृतीयावस्था के लक्षण प्रगट होते हैं।

द्वितीयावस्था के लक्षण उत्तेजना (Irritation) से होते हैं। इस में स्फोट होते हैं। स्फोटों का कारण क्या होता है? छोटी २ रक्त-वाहिनियों (केशिकाओं अर्थात् Capillaries) के प्रान्त भागों में रोग की विषें और जीवाणु उत्तेजना करते हैं। इस क्षोभ से (Irritation से) स्फोटों और अन्य द्वितीयावस्था के लक्षणों का प्रादुर्भाव होता है।

परन्तु तृतीयावस्था में लक्षण Degenerative type के होते हैं। (Degenerative शब्द का पर्यायवाची शब्द लिखना कठिन है। मैं प्रतिजन्यता शब्द घड़ कर लिख रहा हूँ। पाठक इसके लिए क्षमा करेंगे। प्रतिजन्यता अर्थात जन्यता के प्रतिकूल, इस शब्द से आशय है।) इन प्रतिजन्यता-सूचक

लक्षणों में, छोटी २ रक्त-वाहिनियों की शोथ होकर रक्त का प्रवाह कई जगहों में होने से रुक जाता है। रक्त शरीर के प्रत्येक तन्तु को उसका भोजन पहुंचाता है। भोजन के अभाव में उस तन्तु की मृत्यु हो जाती है। सो रक्त के पर्याप्त मात्रा में न पहुंचने से या बिल्कुल न पहुंचने से उन जगहों के तन्तुओं की मृत्यु हो जाती है। इन तन्तुओं की मृत्यु का प्रदर्शन तृतीयावस्था के लक्षणों द्वारा होता है।

तृतीयावस्था में शरीर के निम्न स्थान निम्न क्रम से आक्रान्त होते हैं।

वात संस्थान	४०%
त्वचा	३३%
अस्थियाँ	१५%

परन्तु वात संस्थान के आक्रान्त होने से पैदा हुए लक्षण बहुत देर में जाकर प्रगट होते हैं। इन लक्षणों के पैदा होने को Parasyphilitic stage या तुरीयावस्था में गिना गया है। त्वचा और अस्थियों सम्बन्धी लक्षण तृतीयावस्था के लक्षणों की उपक्रमणिका बांधते हैं।

उपरोक्त प्रतिशतकों से ये स्पष्ट है कि १०० में से चालीस तो वात-संस्थान के लक्षणों वाले रोगी होते हैं और ३३ त्वचा वाले। तो इस से ये स्पष्ट हुआ कि वात संस्थान वाले रोगियों को छोड़ कर शेष रोगियों में त्वचा के रोगी करीबन आधा आधा बट वारा करते हैं। अर्थात् १०० में से वातसंस्थान के रोगियों को निकाल दिया जाय तो बाकी बचे ६०, उनमें ३३ अर्थात् करीबन आधे त्वचा

के रोगी होते हैं। शेष रोगियों में अस्थियों के रोगी अधिकांश में होते हैं। अर्थात् बाकी के २७ में से १५ अस्थियों के रोगी होते हैं। अस्थियों के रोगियों के बाद निम्न लिखित स्थानों पर आक्रान्त हुए हुए तृतीयावस्था के रोगी देखने में आते हैं।

(१) मुख (२) जिह्वा (३) तालु (४) Fauces (कण्ठमुख) (५) अण्ड (Testes) (६) जननेन्द्रियाँ (अण्डों के अतिरिक्त) (७) त्वचाधोवर्ती तन्तु (Subcutaneous tissues)

उपरोक्त सातों अंगों से कम आक्रान्त होने वाले छे प्रदेश निम्न हैं—

(१) सन्धियाँ (२) आंखे (३) Pharynx (कण्ठ) (४) Larynx (स्वर यन्त्र) (५) प्लीहा (Spleen) (६) लसीका ग्रन्थियाँ इन उपरोक्त स्थानों व प्रदेशों के अतिरिक्त इनसे कम आक्रान्त। होने वाले और भी कई शरीरावयव होते हैं। जैसे कि पचन-संस्थान में भोजनप्रणाली, आमाशय, यकृत् आदि; श्वास-संस्थान में फुफ्फुस; मूत्रसंस्थान (Urinary System) में वृक्क, तथा इन संस्थानों के अतिरिक्त, उपवृक्क, Pituitary gland, मांसपेशियां, श्लेष्म-कलाएँ, रक्तवाहिनियाँ और हृदय भी आक्रान्त होते हैं।

छोटी २ रक्त-वाहिनियाँ जिन्हें केशिकाओं के नाम से पुकारा जाता है हमेशा आक्रान्त होती हैं। इन्हीं के आक्रान्त होने के कारण जैसा कि पहिले बताया जा चुका है, तृतीयावस्था वाले प्रतिजन्यता-रूप (Degenerative type के) लक्षण होते हैं। परन्तु इन छोटी २ केशिकाओं के अतिरिक्त बड़ी बड़ी रक्त

वाहिनियाँ जैसे शरीर की वृहद्धमनी और अन्य रक्तवाहिनियाँ भी आक्रान्त हो जाती हैं। इन बड़ी धमनियों की पोषक छोटी २ रक्तवाहिनियाँ (Vasa vasorum) आक्रांत होजाती हैं और इस कारण ये बड़ी रक्त वाहिनियाँ भी रोग ग्रस्त होती हैं। हृदय भी इसी प्रकार रोग ग्रस्त होता है। या तो इसकी अन्तः कला फिरंग रोग ग्रस्त हो जाती हैं। या इसकी पोषक Coronary arteries रोग ग्रस्त हो जाती हैं। या इस का Conducting system (वहन-प्रपंच देखो मेरी हृद् रोगों की पुस्तक) इस रोग के Gumma के कारण विकृत होजाता है। या इसकी पेशी Gumma के कारण विकृत हो जाता है और कमज़ोर हो जाती है। कमज़ोर होने के बाद हो सकता है कि हृदय के कोष्ठ फैल जाँय और हृदय का (Aneurysm) हो जाय।

अब इन सब अंगों के रोग ग्रस्त होने में जो जो विशेषताएँ होती हैं उनका वर्णन किया जायगा। यदि किसी अंग के रोग ग्रस्त होने में कोई विशेषता नहीं होती होगी तो उसका वर्णन नहीं किया जायगा। उसके विषय में इतना समझना ही काफी है कि उस में (gumma) होते हैं जो कुछ काल के बाद फूट जाते हैं और व्रण में परिवर्तित हो जाते हैं।

वात संस्थान, त्वचा, और अस्थियों के अतिरिक्त इन सब अंगों के आक्रान्त हुए २ रोगियों की गणना शेष १२% में होती है।

वात संस्थान के आक्रान्त होने से प्रादुर्भूत हुए हुए लक्षणों का वर्णन अगले अध्याय में तुरीयावस्था के शीर्षक के नीचे

किया जायगा । ऐसा करने का कारण पहिले ही बताया जा चुका है, वह यह कि ये लक्षण दूसरों की अपेक्षा बहुत देर से प्रगट होते हैं ।

त्वचा—सो सब से पहिले त्वचा को लीजिए । टांगों की त्वचा अकसर आक्रान्त होती है । और वह भी पिण्डली की । छोटे छोटे अर्बुद से जिन्हें Gumma कहा जाता है निकल आते हैं । ये मटर के दाने से लेकर अखरोट के बराबर होते हैं । पहिले बड़े सख्त होते हैं, फिर फूट जाते हैं । फूटने पर एक फोड़ा सा बन जाता है । इस फोड़े की दीवारें सीधी (Punched out) होती हैं । इस के किनारे पतले और Under-mined (अधः खादित) होते हैं । फर्श पीले भूरे से मवाद से ढका होता है । देखने में अण्डाकृति Ulcer (व्रण) होते हैं । Ulcer या फोड़े के चारों ओर लाल भूरे से रंग का छल्ला सा पड़ जाता है । इन के अच्छे होने पर व्रणचिन्ह (Scar) कागज़ की तरह का होता है ।

अस्थियाँ—अस्थियों में तीन प्रकार के लक्षण प्रगट होते हैं ।

(१) Priosteo-osteitis.

(२) Syphilitic caries.

(३) Gummata.

(१) Periosteo-osteitis—Periosteum अस्थि के आवरण को कहते हैं । पहिले इस की शोथ होती है और इस के बाद फिर Osteum अर्थात् हड्डी की शोथ हो जाती है । ये Periosteo-ostitis दो प्रकार की होती है ।

(क) Circumscribed (ख) Diffuse.

(क) Circumscribed में प्रलम्बास्थियाँ शकरकन्दी की तरह Fusiform Shape में आक्रान्त होती हैं। Circumscribed प्रकार, Tibia, हंसुली (Clavicle), और वक्षोऽस्थि (Sternum) में देखा जाता है।

(ख) Diffuse—इस में सारी की सारी अस्थि आक्रान्त होती है। ये प्रकार प्रायः सहज फिरंग में देखने को मिलता है।

(२) Syphilitic caries—फिरंग जन्य अस्थि-नाश। ये अवस्था ललाटास्थि और पार्श्व कपालास्थियों में देखने में आती है। इस में स्थानिक शोथ हो कर अस्थि नाश होता है। स्थानिक दर्द की शिकायत होती है जो रात को बढ़ जाती है। दबाने से सूजी हुई जगह पर स्पर्शाक्षमता होती है। रोगी चोट लगने का इतिवृत्त देता है।

(३) अस्थियों में फिरंग के अर्बुद या Gummata भी पाये जाते हैं। इन के होने से अस्थि कमज़ोर हो जाती है। और इस पर कुछ अधिक भार पड़े तो झट टूट जाती है। नाक के पुल वाली अस्थि (नासास्थि) में Gumma हो तो नाक ही बैठ जाती है।

अब उन सातों अंगों के रोग ग्रस्त होने का वर्णन प्रारम्भ होता है।

मुख में होंठों पर Gumma निकलता है। या होंठ सारे का सारा सख्त हो जाता है। इस के अतिरिक्त मुख में जिह्वा, तालु और Tonsils भी आक्रान्त होते हैं इन का वर्णन नीचे दिया जाता है।

जिह्वा—(क) जिह्वा पर Leucoplakia हो जाता है। Leuko का अर्थ श्वेत हैं। Plakia अर्थात् चकत्ते चकत्ते से। Leukoplakia अर्थात् जिह्वा पर सफेद चकत्ते चकत्ते से बन जाते हैं। जिह्वा श्वेत भूरी सी सूखी हुई और चीरों वाली हो जाती है। Leukoplakia फिरंग के अतिरिक्त अन्य अवस्थाओं में भी होता है। ऐसी दशा बहुत धूम्रपान से भी हो जाती है।

(ख) जिह्वा कभी कभी सारी की सारी सूज जाती है। (और सूजन Interstitial tissue की होती है अर्थात् Interstitial glossitis होती है।) इस पर इधर उधर उभार निकल आते हैं। ये किसी स्थान पर लाल होती है तो किसी स्थान पर पीली। इस पर जो छोटे २ Papilla होते हैं वो किसी किसी जगह पर सपाट हो जाते हैं। जिह्वा फूलने के कुछ अरसे बाद छोटी होनी शुरू हो जाती है। यहाँ तक कि पहिले से भी ज़्यादा सिकुड़ जाती है।

तालु—तालु में Gumma पैदा हो जाता है और मुख और नाक के बीच छेद हो जाता है। आवाज़ बदल जाती है।

Tonsils—किसी एक Tonsil में Gumma हो जाता है। ये Gumma बाद में फूट जाता है, और Ulcer (व्रण) बन जाता है। पर इस Ulcer में दर्द नहीं होती है।

जननेन्द्रियाँ—मनुष्य की जननेन्द्रियाँ—

अण्ड—(I) Interstitial orchitis, इस में सारे अण्ड की वृद्धि होती है। वृद्धि हो कर धीरे २ घटने लगती है। घटते घटते अण्ड बड़ा छोटा सा रह जाता है।

बढ़ा हुआ अण्ड दर्द रहित होता है। उपाण्ड की वृद्धि नहीं होती है। अण्डकोश की त्वचा अण्ड के साथ जुड़ी हुई नहीं होती है। दबाने पर अण्ड-व्याकुलता (स्वस्थ अण्डों को दबाने पर जो जी मचलना है उसे Testicular sensation कहना उपयुक्त है।) विलुप्त होती है। धीरे २ अण्ड अपने कार्य से भी हाथ धो बैठता है।

(II) Gummata—अण्डों पर कभी २ उभार उभार से भी निकल आते हैं। इन्हें आसानी से अनुभव किया जा सकता है। दर्द नहीं होती है। न स्पर्शाक्षमता होती है। रज्जु (Spermatic cord) आक्रान्त नहीं होती है।

कभी २ अण्डों की थैली (Tunica Vaginalis) में पानी भर जाता है। इस पानी के भर जाने को Hydrocele कहते हैं। बढ़ा हुआ अण्ड कोश इस अवस्था में टकोरने पर ठस (Dull) आवाज़ देता है। पानी की ठस आवाज़ ठोस (Solid) की ठस आबाज़ से कुछ भिन्न होती है। अनुभवी कान झट फर्क मालूम कर लेता है। दर्द-रहित होता है। हाथों में पकड़ कर अनुभव करने से लचकीला होता है। एक ओर रोशनी डालने से रोशनी आर पार निकलती हुई दिखाई देती है।

शिश्न—कभी कभी शिश्न के फिरंगार्बुद भी देखने में आते हैं। जब वह फट जाएँ तो ऐसी अवस्था में Chancre से इन का भेद करना बिल्कुल भी कठिन नहीं होता है। Gumma की दीवार सीधी होती है (Punched out)। इस के किनारे पतले और Undermined होते हैं। इन का फर्श सफेद से मवाद से ढका हुआ होता है। इस के इलावा

Chancre वाली, वंक्षण की लसीका ग्रन्थियों की सोज भी Gumma की उपस्थिति में नहीं होती है।

कभी २ सारे का सारा शिश्न Gumma से आक्रान्त हो जाता है, और कभी २ टेढ़ा हो जाता है। Gumma के बाद जब सौत्रिकतन्तु (Fibrous tissue) बनते हैं तो कुछ काल बाद ये सिकुड़ जाते हैं। जिस से शिश्न टेढ़ा सा हो जाता है। (इसे Chordee कहते हैं।) ये दशा बहुत कम देखने में आती है।

स्त्रियों में—भग (Vulva) और भगोष्टों पर Gumma अकसर मिलता है। इसके बाद Gumma फूट जाता है। फूटने के बाद गम्मा में अगर पूय-जनक जीवाणुओं का आक्रमण हो जाय तो दर्द भी होती है। इस प्रदेश (भग) में न तो Chancre और न गम्मा ही Typical होते हैं। अर्थात् जैसे Chancre और Gumma और जगह पाए जाते हैं और यहां भी पाए जाने चाहिये नहीं मिलते हैं। इसका कारण ये होता है कि योनिस्राव, मूत्र और कपड़ों आदि से इनकी असली शकल बदल जाती है।

योनि—यदि मलाशय (Rectum) और योनि के बीच वाले पर्दे में गम्मा हो जाय और बाद में फूट जाय तो मलाशय और योनि के बीच छेद हो जाता है। इसे Rectovaginal-fistula कहते हैं।

गर्भाशय—गर्भाशय के अन्दर की झिल्ली अर्थात् Endometrium और गर्भाशय की मोटी दीवार अर्थात् मांस पेशी वाली तह दोनों में गम्मा मिलते हैं। इनकी उपस्थिति के कारण रक्त और पूय- युक्त स्राव होता है। यदि पेशी स्राव-युक्त

स्त्री में फिरंग का शक हो तो फिरंग के रोग विनिश्चयार्थ थोड़ा सा इलाज करके देख लेना चाहिये। फायदा होगा तो समझो कि वह स्राव फिरंग के गम्मा के कारण ही था।

डिम्बप्रणालियां और डिम्ब ग्रन्थियां—ये अंग भी (अण्ड अर्थात् Testes की तरह) उम्मेद है कि फिरंग रोग के गम्मा का शिकार ज़रूर बनते होंगे। पर इस बात का निश्चय करना कठिन है। क्योंकि इन्हें बाह्य परीक्षा से ज्ञात नहीं किया जा सकता।

स्तन—स्तनों में गम्मा पाये जाते हैं। ये अपने विशिष्ट लक्षणों से युक्त होते हैं। अर्थात् Punched out appearance (स्पष्ट साफ कटा हुआ किनारा) इत्यादि। दर्द-रहित होते हैं। कांखों की लसीका ग्रन्थियाँ बढ़ी हुई नहीं होती हैं।

कई वार स्तनों की फैली हुई (व्यापी) सोजन भी होती है जो फिरंग का इलाज करने पर ग़ायब हो जाती है।

त्वचाधोवर्ती तन्तु—त्वचा के नीचे त्वचाधो-वर्ती तन्तुओं (Subcutaneous tissues) में गम्मा बन जाते हैं। पहिले तो त्वचा इन फिरंगार्बुदों से जुड़ी हुई नहीं होती है। पर बाद में त्वचा लाल और संयुक्त हो जाती है। गम्मा फूटते हैं और व्रण (Ulcers) बन जाते हैं। ये प्रायः नितम्बों पर, जांघों के पीछे और पिण्डलियों पर पाए जाते हैं।

सन्धियाँ—(क) Chronic synovitis—सन्धियों के अन्दर की श्लेष्मकला की चिरस्थायी शोथ को Chronic synovitis कहते हैं। ये दर्द रहित होती है। अकसर जानु सन्धियों में होती है। दोनों ओर होती है और सन्धियों में द्रव (Effusion) भरा हुआ होता है। द्रव की परीक्षा Patellar

tap द्वारा की जाती हैं। Patellar tap की विधि निम्न है-Patella जान्वस्थि को कहते हैं। इसे अंगूठे और तर्जनी के बीच पकड़ कर ज़रा कोमल से झटके के साथ दबाने से यदि संधि में द्रव हो तो ये टक करके उर्व्वस्थि के निचले सिरे के साथ टक्कर खाता है। इसलिए patellar tap (जिसे जान्वस्थि की टकटकाहट भी कह सकते हैं) संधि में द्रव भरा हुआ है, इस बात की द्योतक होती है।

(ख) Gummatous arthritis. यदि सन्धि में, सन्धि की श्लेष्म कला के बाहर Perisynovial tissue में गम्मा हो जाय तो तब भी सन्धि में थोड़ा सा द्रव भर जाता है। इस दशा में एक पार्श्व की सन्धि ही आक्रान्त होती है।

(ग) Charcot's joints—चारकोट की सन्धियाँ। ये दशा अकसर Tabes dorsalis (टेबीज डॉर्सेलिस) के साथ देखने में आती हैं। Tabes dorsalis का वर्णन अगले अध्याय में किया गया है, देखो पृष्ट संख्या ७६। परन्तु बहुधा, Tabes-dorsalis के लक्षण प्रगट होने से कहीं पहिले भी यह अवस्था देखने में आती है। आक्रमण यका-यक होता है। सन्धि फूली हुई होती है। सन्धि का द्रव (Effusion) धीरे जज़्ब हो जाता है। पर फिर भरता और जज़्ब होता है। प्रत्येक पुनराक्रमण से सन्धि अधिकाधिक दुर्दशा को प्राप्त होती जाती है। अन्ततोगत्वा सन्धि बिल्कुल ही अनुपयोगी और कार्य्य-रहित हो जाती हैं। जोड़ों के फूलने के दो कारण होते हैं। एक तो इनमें द्रव भरा होता है, दूसरे उन अस्थियों के सिरे जो सन्धि में भाग लेती हैं फूले हुए होते हैं। सन्धि में वर्तमान तरुणास्थियाँ (Articular

cartilages) भी खाई जाती हैं। अस्थियों के सिरे पर नव जात अस्थि के उभार-उभार से निकल आते हैं। इन उभारों की रगड़ से करकराहट (Grating) होती है। सन्धियाँ या तो पहिले से अधिक गति-युक्त हो जाती हैं। या कम गति-युक्त हो जाती हैं। यहाँ तक कि कभी २ Locking (स्तम्भ) हो जाता है। निम्नसन्धियाँ अधिकतः आक्रान्त होती हैं।

(१) जानु की (२) गिट्टे की (३) कोहनी की।

अक्षियाँ—अक्षि की प्रायः वात नाड़ियों में रोग-जन्य दोष पैदा होते हैं। इनका वर्णन तुरीया-वस्था में किया जायगा। वातनाड़ियों को छोड़ कर शेष अक्षि के भाग दुर्लभ रूप से आक्रान्त होते हैं। यदि कोई भाग आक्रान्त भी हों तो वो Iris और Sclera हैं। Sclera अक्षि का श्वेत पटल है, जो सामने Conjunctiva (अक्षि पर्यावरण) से ढका होता है, और Cornea (अर्थात् पारदर्शक पटल) के साथ पीछे की ओर गया हुआ होता है। Iris अक्षि के मध्य या रक्त-पटल का भाग है, जो कनीनिका के निर्माण में भाग लेता है। इसे आँख में पुतली के चारों ओर Cornea के पीछे देख सकते हैं। गोरे आदमियों में इसका रंग नीला भूरा सा होता है। काले आदमियों में ये बहुत काला होता है।

कण्ठ (Pharynx)—कण्ठ की पिछली दीवार पर अकसर गम्मा निकलते हैं। ये गम्मा फूट जाते हैं और व्रण बन जाते हैं।

स्वर-यन्त्र (Larynx)—में तृतीया वस्था में चार प्रकार के फिरंग के उत्पात हो सकते हैं।

प्रथम तो यह कि सारे स्वरयन्त्र में फैला हुआ गम्मा निकल आए। दूसरा यह कि गम्मा फूट जाय और वो Gummatous ulcer में बदल जाय। तीसरा यह कि छोटे २ मस्सों की तरह के उभार उभार से स्वर-यन्त्र में सब जगह निकल आएँ। चौथा यह कि Ulcer (व्रण) के भरने पर पीछे से जगह सिकुड़ जाय और इस सिकुड़ जाने से स्वर-यन्त्र विकृत हो जाय (Cicatricial deformity).

दर्द नहीं होती है। आवाज़ बैठ जाती है। कई रोगियों में आवाज़ बिलकुल ही नष्ट हो जाती है। खांसी और श्वास-काठिन्य बहुत दुःखदाई होते हैं। यदि सोज़िश बहुत हो जाय या Necrosed Tissue (मृत तन्तु) श्वास नाली का छिद्र रुद्ध कर दें तो श्वासरोध हो जाता है।

तिल्ली या प्लीहा—Parenchymatous splenitis हो जाने से तिल्ली आकार में बढ़ जाती है, पर ऐसा बहुत कम देखने में आता है।

लसीका-ग्रन्थियाँ—कई रोगियों में सारे शरीर की लसीका ग्रन्थियाँ बढ़ी हुई होती हैं। ऐसी अवस्था में निम्न लिखित तीन रोगों से इन फिरंग की लसीका ग्रन्थियों का रोग विनिश्चय किया जाता है।

(१) क्षय (Tuberculosis) की लसीका ग्रन्थियों की वृद्धि।

(२) हॉजकिन की लसीका ग्रन्थियों की सार्वस्थानिक वृद्धि।

(३) Lymphosarcoma.

पर रोग विनिश्चय में कोई कठिनता नहीं होती है।

ये पहिले बताया ही जा चुका है कि छोटी छोटी रक्त-वाहिनियों अर्थात् केशिकाओं (Capillaries) के आक्रान्त होने से फिरंग की तृतीयावस्था के बहुत से लक्षण पैदा होते हैं।

यदि किसी भी गम्मा को काट कर सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र के नीचे देखा जाय तो छोटी २ रक्तवाहिनियां बन्द हुई हुई मिलती हैं। इनके बन्द होने का कारण इनकी अन्तःकला की शोथ है। इस शोथ को Endarteritis कहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि धीरे २ ये छोटी २ रक्तवाहिनियाँ बिल्कुल ही बन्द हो जाती हैं। और उस भाग की खुराक रक्त के न पहुंचने से मारी जाती है। वह भाग मृत हो जाता है। और इस प्रकार गम्मा बनता है। यहां पर Pathology (विकृत रचना) लिखने की आवश्यकता नहीं, कि इस गम्मा के केन्द्र में Giant cell होता है, चारों ओर Lymphocytic infilteration होती है; इत्यादि—क्योंकि यह पुस्तक इस विषय पर सम्पूर्ण ज्ञान को प्रकाशित करने के उद्देश्य से नहीं लिखी गई है अपितु चिकित्सक के लिये इस विषय का जो ज्ञान उपयोगी और आवश्यक है, केवल मात्र उतने को ही बतलाने के उद्देश्य से लिखी गई है।

यही Endarteritis (रक्तवाहिनियों की अन्तःकला की शोथ) किसी भी जगह की रक्तवाहिनियों में हो सकती है। इसके बाद आक्रान्त वाहिनियाँ उस स्थान पर जहाँ यह शोथ हुई हो कमज़ोर हो जाती हैं। इस कमज़ोरी का परिणाम Aneurysm होता है। अर्थात् उस आक्रान्त जगह पर जब संचार करते हुए रक्त का दबाव पड़ता है तो वह जगह दबाव

के आगे कमज़ोर होने के कारण फूल जाती है। उदाहरणार्थ पाठकोंने फुटबाल खेलते हुए कई बार देखा होगा कि यदि फुटबाल में कोई जगह कमज़ोर हो और फूक खूब ज़ोर से भरी हुई हो तो ब्लैडर का उस जगह का हिस्सा फूलकर उभर आता है। और फुटबाल बदशकल सा हा जाता है। बाईसिकल (दुपहियों) के पहियों में भी कई बार देखने में आता है कि अगर टायर किसी जगह फट जाय तो ट्यूब उस जगह से बाहर फूल आती है। रक्तवाहिनियों की दीवार भी अगर किसी जगह कमज़ोर हो तो वहाँ इसी सिद्धान्त पर Aneurysm हो जाता है। Aneurysm (वाहन्यबुर्द) कई प्रकार के होते हैं। इनके विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त करना हो तो शल्य-कर्म-ज्ञान या चिकित्सा की किसी पुस्तक को पढ़ना चाहिए।

रक्तवाहिनियों की अन्तःकला के रोगाविष्ट होने के कारण कई प्रकार के उत्पात होने लगते हैं। इनमें से मुख्य उत्पातों का नामोल्लेख किया जाता है। ये Atheroma, arteriosclerosis, embolism, gangrene, aortic regurgitation, angina pectoris, epileptic fits, cerebral apoplexy हैं। ये कैसे होते हैं और इनमें से कुछ क्या हैं? इस ज्ञान के लिए किसी बड़ी चिकित्सा की पुस्तक का स्वाध्याय करना चाहिए। यहाँ पर इनके बारे में कुछ और अधिक विस्तार से लिखना असंगत प्रतीत होता है।

आठवाँ अध्याय

तुरीयावस्था (Quaternary stage or para-syphilitic stage).

इस अध्याय के प्रारम्भ में ही पाठकों को सूचित कर दिया जाता है कि इन वातिक रोगों का विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्हें वातिक रोगों (Neurology) की किसी पुस्तक का अध्ययन करना चाहिये। इस पुस्तक में तो फिरङ्ग के इन वातिक उत्पातों का वर्णन संक्षेप से ही किया जायगा।

उन रोगियों में जिनमें द्वितीय और तृतीय अवस्थाओं में फिरङ्ग के लक्षण मामूली तौर पर प्रगट हुए हों उन्हें अकसर चतुर्थावस्था के लक्षण प्रगट होते हैं। अर्थात् उनमें बहुधा वातसंस्थान का फिरङ्ग होता है। वातसंस्थान का फिरङ्ग चार भागों में विभक्त किया गया है।

(१) मस्तिष्क का फिरङ्ग (Cerebral syphilis.)

(२) सुषुम्ना का फिरङ्ग (Spinal syphilis.)

(३) टेबीज़ डौर्सेलिस (Tabes dorsalis.)

(४) सौन्मादिक सार्वदैहिक पक्षाघात (General paralysis of insane या G. P. I.)

पहिले बताया जा चुका है कि फिरङ्ग मुख्यतः रक्त-वाहिनियों को आक्रान्त करता है। वातसंस्थान के फिरंग में भी रक्त-वाहिनियाँ मुख्यतः आक्रान्त होती हैं। वातसंस्थान की

श्लेष्म-कलाओं (Meninges) की रक्त-वाहिनियाँ आक्रान्त होती हैं, इसके बाद श्लेष्मकलाएँ (Meninges) आक्रान्त होती हैं और वे वातिक तन्तुओं के साथ चिपट जाती हैं। इस प्रकार पहिली दो प्रकार का फिरंग होता है। यदि मस्तिष्क के आवरण (Meninges) आक्रान्त हों तो मस्तिष्क फिरंग (Cerebral syphilis) होता है। यदि सुषुम्ना के आवरण (Meninges) आक्रान्त हों तो सुषुम्ना-फिरङ्ग (Spinal syphilis) होता है। यदि वातिक तन्तुओं की रक्त-वाहिनियाँ आक्रान्त होकर वातिक तन्तुओं की मृत्यु हो या उनमें विकार आवे तो पिछले दो प्रकार के फिरङ्ग होते हैं। अर्थात् Tabes-dorsalis और सोन्मादिक-सार्वदैहिक-पक्षाघात होते हैं। Tabes Dorsalis में सुषुम्ना आक्रान्त होती है। सुषुम्ना से प्रवेश करने वाली पश्चात् मूल वाली वात नाड़ियाँ (Posterior nerve roots) आक्रान्त होती हैं। उनका आक्रमण Tabes Dorsalis के प्रारम्भ में होता है। और उनके (Ganglions) वात-गण्ड (देखो कोई शरीर रचना की पुस्तक) और सुषुम्ना के बीच का थोड़ा सा भाग आक्रान्त होता है। इसके बाद सुषुम्ना का पश्चिमस्तम्भ (Posterior column) आक्रान्त होता है और इसके अतिरिक्त बाद में सुषुम्ना के और वात मार्ग (Tracts) भी आक्रान्त हो जाते हैं। कहने का सारांश ये है कि Tabes dorsalis सुषुम्ना के वातिक तन्तुओं के नष्ट होने से होती है और सोन्मादिक-सार्वदैहिक-पक्षाघात मस्तिष्क के वात तन्तुओं के नष्ट होने से होता है। पर अनुभव से देखा गया है कि जहाँ पिछली दो बीमारियों (Tabes or G. P. I.) में आवरण

कलाएँ (Meninges) भी थोड़ी बहुत आक्रान्त हुई २ होती हैं, वहाँ पहिली दोनों बीमारियों अर्थात् सुषुम्ना और मस्तिष्क के फिरङ्गों में वातिक तन्तु (Nervous tissue) भी थोड़े बहुत आक्रान्त हुए हुए पाये जाते हैं। पर पहिली दोनों बीमारियों में मुख्यतः आवरण-कलाएँ आक्रान्त होती हैं और पिछली दोनों में मुख्यतः वातिकतन्तु आक्रान्त होते हैं।

मस्तिष्क और सुषुम्ना की तीन आवरण कलाएँ होती हैं, इनके निम्न नाम होते हैं। (१) Dura mater (२) Arachnoid (३) Piamater. इन तीनों आवरणों को इकट्ठा Meninges के नाम से पुकारा जाता है। इन आवरण कलाओं में फिरङ्ग रोग के जीवाणुओं का आक्रमण होने से जैसा कि ऊपर बताया गया है या तो मस्तिष्क फिरङ्ग (Cerebral syphilis) या सुषुम्ना फिरंग (Spinal syphilis) रोग होते हैं। ये दोनों रोग अकसर प्रथमावस्था के ५–६ साल बाद प्रगट होते हैं। इन में से पहिले मस्तिष्क रोग के लक्षणों का निर्देश किया जायगा।

मस्तिष्क-फिरंग या Cerebral syphilis

या तो Arachnoid (मध्यावरण) और Piamater (अन्तः आवरण) आवरण कलाओं की शोथ हो जाती है जिसे Lepto-meningitis कहते हैं। या आवरण कलाओं में कहीं भी Gummata (गम्मा का बहुवचन है) हो जाते हैं जिनके कारण कि नीचे लिखे लक्षण प्रकट होते हैं। साधारणतः मस्तिष्क के आधार पर विद्यमान आवरणकलाएँ आक्रान्त

होती हैं। सब से मुख्य लक्षण यह होता है कि शिरोपीड़ा होती है। ये शिरोपीड़ा रात्रि के समय बढ़ जाती है। मुख्यतः ललाट प्रदेश पर होती है, पर पार्श्व और पीछे के प्रदेशों में भी हो सकती है। रोगी की बुद्धि कुण्ठित सी हो जाती है। कभी २ सिर में चक्कर आते हैं। उसे ये अनुभव होता है कि उसकी मानसिक अवस्था स्वस्थ नहीं है। वो शनैः २ पागल हो रहा है। कभी २ उसे उत्तेजना भी होती है। उत्तेजना से यहां तात्पर्य ये है कि वो पागलों की तरह बहुत बकवास करता है या बहुत हाथ पांव मारता है। खामख्वा लड़ने को तैयार होता है इत्यादि। उत्तेजना से यहाँ ये मतलब नहीं है कि हुशियारी आकर वीर्य-पात हो जाता है। ऊपर की पलकें (Eye-lids) आगे की ओर झुकी हुई हो जाती हैं इसे वर्त्मच्युति कहते हैं। आंखों की पुतलियाँ एक बराबर नहीं रहती हैं। एक बड़ी हो जाती है या दूसरी छोटी हो जाती है।

मार्शल महोदय की सम्मति में निम्न १३ नुक्तों पर ध्यान रखना चाहिए, और इनके आधार पर मस्तिष्क-फिरंग का निर्णय करना चाहिए।

(१) शिरो-वेदना-रात्रि के समय जो अधिक हो जाय या रात्रि के समय जिसके आक्रम (Exacerbation) हों।

(२) मृगी के से दौरे आएँ। ये युवावस्था में प्रारम्भ हुए हों। पूर्ण रूप से न आते हों। धीरे २ बढ़ते जांय और दौरों के समय रोगी सचेत रहता हो।

(३) अक्षिगोलक की गतियां करने वाली मांस पेशियों के आघात (Paralyses) हों।

नोट—इन मांसपेशियों की गतियाँ मस्तिष्क की तीसरी चौथी और छठी वात नाडियाँ करती हैं।

(४) अक्षि की दृष्टि-नाड़ी (Optic nerve) की शोथ (Optic neuritis) हो।

(५) अपूर्ण पर बहुसंख्यक आघात, जा अनियमित रूप में होवें।

(६) Aphasia—वाक् शक्ति का नाश। इससे ये मतलब है कि रोगी, स्वर यन्त्र आदि में कुछ भी दोष न होते हुए, मस्तिष्क के विकार के कारण बोलने में असमर्थ हो जाता है। मस्तिष्क में वाक्-शक्ति का एक केन्द्र होता है। जो दाएँ हाथ से काम करने वाले व्यक्तियों में बाईं ओर होता है और बाएँ से काम करने वाले व्यक्तियों में दाईं ओर होता है। इस केन्द्र के विकार युक्त होने से वाक् शक्ति का नाश होता है। यदि आदमी की वाणी के स्वर का लोप हो जाय तो उसे स्वर-नाश कहते हैं (Aphonia)। वाक्शक्ति का नाश नहीं कहते हैं। पाठकों को "वाक्शक्तिनाश" इस शब्द का अर्थ भली प्रकार समझ लेना चाहिए।

(७) मानसिक-विकार, जैसे स्मृति-शक्ति का यकायक या धीरे २ नाश होना।

(८) अर्द्धाङ्ग—अपूर्ण होता है। और इसके साथ चेतना-शक्ति (Conciousness) का नाश नहीं होता है।

(९) शीघ्र होने वाली शारीरिक अस्वस्थता। जैसे मांस-पेशियों की क्षीणता, पाण्डुता आदि।

(१०) अन्यान्य मस्तिष्क रोगों के लक्षणों का बेतुका मेल—जैसे अर्द्धाङ्ग पक्षाघात, उभय-पक्षक पक्षाघात, Mania (उन्माद-विशेष), आँखों का भैंगापन, मृगी, मानसिक विकार आदि मस्तिष्क रोगों के लक्षणों का बेतुका मेल।

(११) फिरंग-रोग की चिकित्सा का लाभकर परिणाम।

(१२) बीमारी का शनैः २ बढ़ना।

(१३) रोग के लक्षणों का पुनः पुनः लोप तथा प्रत्यावर्तन।

इन लक्षणों में पुतली के परिवर्तनों का वर्णन नहीं किया गया है। इनका वर्णन भी आवश्यक था।

पुतलियों में परिवर्तन—(१) जब पुतलियों पर प्रकाश फेंका जाता है तो स्वस्थ पुरुषों में पुतलियाँ सिकुड़ जाती हैं। परन्तु इस रोग में नहीं सिकुड़ती हैं।

(२) यदि किसी स्वस्थ पुरुष को पहिले किसी दूर के पेड़ को देखने के लिए कहा जाय और फिर कोई पास की चीज़ जैसे हाथ में पकड़ी हुई पुस्तक देखने के लिए कहा जाय तो तब भी पुतलियाँ पास की चीज़ देखने पर सिकुड़ जाती हैं। इस लक्षण को Accomodation Reflex कहते हैं।

पुतलियों के एक लक्षण-विशेष का नाम Argyll-Robertson pupil है। मेरा ऊपर के अंक दो से इसी लक्षण को लिखने का तात्पर्य है। इस लक्षण में प्रकाश के फेंकने पर तो पुतलियाँ नहीं सिकुड़ती हैं, परन्तु यदि Accomodation Reflex लिया जाय तो उपस्थित होता है। इस रोग में Argyll-Robertson pupil चाहे मिले या न मिले, Light-reflex हमेशा लुप्त होता है।

मस्तिष्क फिरङ्ग का उपरोक्त वर्णन सर्वथा स्पष्ट नहीं है, अतः संक्षेप में व्यूमाँउन्ट महोदय की Medicine (Essentials of medicine for practitioners and students) से कुछ अंश उद्धृत करता हूँ।

"रोगी ४ या ५ साल पहिले फिरंग से ग्रस्त होने का इतिवृत्त देता है। सिर दर्द होती है जो रात को बढ़ जाती है। स्मृति-भ्रंश हुआ हुआ होता है। अंगों के अपूर्ण पक्षाघात (Pareses) हुए हुए होते हैं। दृष्टि द्वित्व हुई होती है अर्थात् हर एक चीज़ दो दो करके दिखाई देती है।

मस्तिष्क-फिरङ्ग चार प्रकार का होता है।

(क) शीर्षस्थानीय-मस्तिष्क पर्यावरण-शोथ—इसमें मस्तिष्क के पर्यावरणों के उन भागों की शोथ होती है जो कि मस्तिष्क के शीर्ष भाग में होते हैं। मृगी जैसे दौरे होते हैं। दौरों के दौरान में रोगी हो सकता है कि अचेत हो या न हो (Unconcious)

(ख) मस्तिष्काधार के पर्यावरणों की शोथ—अर्थात् जब कि मस्तिष्काधार पर उपस्थित मस्तिष्क के पर्यावरण आक्रान्त हों। इस अवस्था में कई मस्तिष्क की वात-नाडियाँ (Cranial nerves) भी आक्रान्त होती हैं। इन का आक्रान्त होना स्वाभाविक ही है। क्योंकि ये उसी स्थान से गुज़रती हैं। इनके आक्रान्त होने से कई प्रकार के लक्षण प्रगट होते हैं। जैसे कि दृष्टिनाड़ी की शोथ (Optic neuritis); असमान, अनियमित और स्थिर पुतलियाँ, वर्त्म-च्युति (Ptosis), बाह्यअक्षिगोलक-पेशियों की कमज़ोरी, चेहरे में दर्द उठना,

बाधिर्य, जिह्वा के एक पार्श्व की कमज़ोरी या एकपक्षी वाक्-तन्त्री (Vocal cord) का आघात।

(ग) मस्तिष्क का फिरंगार्बुद (Gumma)—लक्षण वैसे ही होते हैं, जैसे कि किसी मस्तिष्कार्बुद में। दृष्टि नाड़ी की शोथ (Optic neuritis) होती है, वमन और शिरोवेदना होते हैं।

(घ) फिरंगजन्य मानसिकशक्ति-ह्रास (Dementia)—विकसित हुई हुई सब मानसिक शक्तियों का ह्रास हो जाता है। ये लक्षण मुख्यतः सार्वदैहिक पक्षाघात में मिलता है, जब कि फिरंग के कारण मस्तिष्क तन्तुओं का नाश हुआ होता है। ये पहिले ही बतलाया जा चुका है, कि किस प्रकार मस्तिष्क के आवरण आक्रान्त हो कर मस्तिष्क के साथ चिपक जाते हैं। इस चिपकने का परिणाम कई रोगियों में मानसिक शक्तियों का ह्रास होना बिलकुल स्वभाविक है। परन्तु सार्वदैहिक पक्षाघात से मुख्य भेद ये होता है कि इस रोग में मस्तिष्क की वातनाड़ियों के आक्रान्त होने के कारण पैदा हुए हुए लक्षण भी उपस्थित होते हैं।"

सुषुम्ना-फिरंग (Spinal syphilis)

पहिले बताया जा चुका है कि जब सुषुम्ना के आवरणों में फिरंग होता है, तो साथ ही बहुधा सुषुम्ना के वातिक तन्तुओं की रक्त-वाहिनियां भी कुछ न कुछ आक्रान्त होती हैं। यदि केवल आवरण ही आक्रान्त होवें तो वो अकसर छाती के प्रदेश (Dorsal region) में आक्रान्त होते हैं।

कभी कभी ग्रीवा के प्रदेश (Cervical region) में भी आक्रान्त हो जाते हैं। इसके बाद आक्रान्त आवरण सुषुम्ना के साथ चिपक जाते हैं और सुषुम्ना की रक्त-वाहिनियों को आक्रान्त कर देते हैं। ऐसी हालत को Meningo-myelitis (आवरण तथा सुषुम्नाशोथ) कहते हैं। ये चिरकालिक होती हैं। ग्रीवा-देशीय तथा वक्षोदेशीय भेदों से दो प्रकार की होती है।

ग्रीवाप्रदेशीय—इस में रोगी शिकायत करता है कि ग्रीवा में, पीठ के उपरले भाग में, और बाहुओं में दुःखदाई पीड़ाएँ उठती हैं। बाहुओं की मांसपेशियों में निर्बलता हुई २ होती है।

वक्षोदेशीय—रोगी की परीक्षा करने पर, Thoracic meningo-myelitis में अधो प्रशाखाओं का आघात (Hemiplegia) होता है। टांगों की मांस-पेशियों में अकड़ांद (Spasticity) होती है। गहरे प्रस्पन्दन (Deep reflexes) बढ़े हुए होते हैं। पादतल-प्रक्षेप (Plantar response) उर्ध्वगामी (Extensor) होता है। उदर के प्रक्षेप (Abdominal reflexes) सुषुम्ना में प्रादुर्भूत रोग के केन्द्र की ऊंचाई के अनुसार केवल नीचे के, या सारे विलुप्त हो जाते हैं। टांगों पर स्पर्शादि का अनुभव (Sensation) मन्द पड़ जाता है या बिल्कुल ही लुप्त हो जाता है। कुछ महीनों तक इस रोग का प्रकोप रहता है। इसके बाद इलाज से ये दूर हो जाता है।

रोगी स्वयमेव क्या बताता है?—रोगी वक्षस् की पीठ में

पीड़ाओं की शिकायत करता है। वो अनुभव करता है कि लातें सुन्न होती जा रही हैं, और मूत्र तथा मल का त्याग स्वयमेव होजाता है।

Acute transverse myelitis—सुषुम्ना में कभी २ फिरंग के प्रकोप के कारण Acute transverse myelitis भी हो जाती है। इसके लक्षण वही होते हैं जो साधारण Acute transverse myelitis के होते हैं। फ़रक इतना ही होता है कि ये फिरंग के कारण हुई हुई होती है। इसके लक्षणों के लिये किसी वातिक संस्थान के रोगों पर लिखी हुई पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए।

Meningo-myelitis और Acute transverse myelitis में भेद :—Acute transverse myelitis में शुरु २ में आघात (Paralyses) प्रारम्भ होने पर Flaccid या शिथिलता-युक्त होते हैं। गहरे प्रस्पन्दन (Reflexes) लुप्त हो जाते हैं। पादतल-प्रक्षेप (Plantar response) उपस्थित नहीं होता है। इस अवस्था के बाद फिर अधोप्रशाखा की मांस-पेशियों में अकड़ांद, गहरे प्रस्पन्दनों का बढ़ा हुआ होना, और पाद-तल-प्रक्षेप का उद्गामी होना, लक्षण प्रगट होते हैं। Meningo-myelitis में बाद के तीनों लक्षण शुरू से ही होते हैं, और पहिले बताए तीन लक्षण (Flaccid paralysis, loss of tendon reflexes, and plantar response) नहीं होते हैं।

टेबीज़ डौर्सेलिस और सार्वदैहिक पक्षाघात

ऊपर बताया जा चुका है कि यदि सुषुम्ना और मस्तिष्क के आवरण ही मुख्यतया आक्रान्त होवें तो पहिले दो प्रकार के फिरंग होते हैं। पर जिस हालत में मस्तिष्क और सुषुम्ना के वातिक तन्तु मुख्यतया आक्रान्त हों उसमें Tabes dorsalis और General paralysis of insane होते हैं। ये वातिक तन्तु किस प्रकार आक्रान्त होते हैं, इसके विषय में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है। यहाँ पर यह याद रहे कि फिरंग केवल रक्त-वाहिनियों को ही आक्रान्त करता है। सो जिस वातिक प्रदेश की रक्त-वाहिनियाँ प्रदूषित होती हैं वो वातिक-प्रदेश भी विकृत हो जाता है, और अपना काम करने में अशक्त हो जाता है। यही प्रकार है कि जिससे वातिक तन्तु आक्रान्त होते हैं। यहाँ इस विषय की Pathology (विकृत-रचना-विज्ञान) लिखने की आवश्यकता तो अवश्य है, पर इसका स्पष्ट रूप से हिन्दी में लिखना पारिभाषिक शब्दों की कमी के कारण कुछ कठिन है। इसलिए मैं इस विषय को यहाँ पर नहीं छेड़ता हूँ। हो सका, तो, भविष्य में इस पुस्तक की पुनरावृत्ति होने पर कुछ न कुछ विस्तार से उल्लेख किया जायगा। केवल दो शब्द अंग्रेज़ी के लिखकर रोगों का वर्णन प्रारम्भ करता हूँ।

Syphilitic infections of the brain and cord known as general paralysis, and tabes are now generally accepted as different forms of

the same disease which is infection of the capillaries and parenchyma of the brain, and spinal cord by the spirochœta pallida and chronic irritation by their toxins with resultant sclerosis and degenerations of nerve cells.

ये दोनों रोग प्रायः फिरंग रोग के प्रारम्भ से, ६ से १२ साल के बीच प्रगट होते हैं। हो सकता है कि दोनों जुदा-जुदा रोगियों में मिलें, या Tabes होकर general paralysis हो जाय। या दोनों ही इकट्ठे एक रोगी में उपस्थित होवें।

Tabes dorsalis. टेबीज़ डौर्सेलिस

इस रोग का दूसरा नाम Locomotor ataxia भी है।

रोग का लक्षण—निम्न मुख्य लक्षणों वाले रोग को ये नाम दिया गया है।

(क) दर्द (ख) अनुभवों (Sensations) के विकार या दोष। (ग) मांस पेशियों में स्वाभाविक तनाव (Tone of the muscles) की कमी (Hypotonus)।

(घ) लड़ खड़ाना—शरीर की मांसपेशियों का सामूहिक रूप से एक रस होकर कार्य करने में अशक्त होना।

(Incoordination)

(ङ) गहरे प्रस्पन्दनों (Deep reflexes) का विलोप हो जाना।

(च) क्षीणता दोष (Trophic changes)।

(छ) अन्तरावयवों में परिवर्तन (Visceral changes)।

संक्षेप से इस रोग के लक्षणों का उल्लेख नीचे किया जाता है।—

इस रोग में सुषुम्ना के पश्चिमवर्तीस्तम्भों (Posterior columns) का Degeneration (विकार, विकार की अपेक्षया प्रतिजन्यता शब्द अधिक उचित है) होता है।

निम्न प्रत्यावेगों या प्रक्षेपों (Reflexes) में परिवर्तन प्रगट होते हैं।

Superficial reflexes (उपरी प्रत्यावेग) विलुप्त हो जाते हैं। पादतल-प्रत्यावेग (Plantar response) रोगके प्रारम्भ में ही विलुप्त हो जाता है। Cremasteric reflex (क्रिमैस्ट्रिक प्रत्यावेग) सब से अन्त में जाकर लुप्त होता है।

गहरे प्रत्यावेग (Deep reflexes)—जानुवेग, कफोणि-वेग, और फल्गुवेग (Ankle jerk or Tendo-Achilles reflex) बहुधा लुप्त हो जाते हैं।

जानुवेग का लुप्त होना Westphal's (वेस्टफाल का) Sign कहलाता है। ये इस रोग की खास निशानी है। जानु-वेग का लोप Ataxia (लड़खड़ाहट) से पहिले होता है। और इसका कारण चतुः शिरस्का (Quadriceps extensor muscle) की Afferent nerves (Sensory nerves)की Degeneration (प्रतिजन्यता) है।

Pupils (पुतलिएँ)—Argyll-Robertson pupil

की उपस्थिति इस रोग का विशेष लक्षण है । Argyll-Robertson pupil का वर्णन पहिले किया जा चुका है। पुतली असमान, अनियमित और सूक्ष्माकार (Pin point size) की भी अकसर हो जाती है।

Ataxia (लड़खड़ाना) या In-coordination—यदि रोगी की आंखें बन्द करके पाँव या हाथों से कुछ कार्य करने को कहा जाय तो ये लड़खड़ाहट और भी अधिक स्पष्ट होती है। दृष्टि लड़खड़ाहट को कम करती है। आँखें बन्द करने पर दृष्टि का कार्य नहीं होता और इस लिए लड़खड़ाहट अधिक होती है।

लड़खड़ाहट पहिले पहिल टाँगों में शुरू होती है, फिर ऊर्ध्व-प्रशाखाओं में भी हो जाती है ।

Romberg's sign—रौम्बर्ग का लक्षण उपस्थित होता है। ये क्यों उपस्थित होता है, इसके लिए Applied physiology की पुस्तक को देखना चाहिए। जब रोगी को पैर जोड़ कर और आंखें बन्द करके खड़ा होने के लिए कहा जाय तो वो आगे, पीछे, या किसी पासे गिरने लगता है। ये इस रोग का विशेष चिन्ह है ।

(नोट—Westphal's sign, Argyll-Roberlson pupil और Romberg's sign इस रोग के विशेष चिन्ह हैं और इनकी एकत्र उपस्थिति इस रोग की निश्चयात्मक कसौटी है।)

चाल—रोगी जब किसी मोड़ पर मुड़ने लगता है, तो उसके पैर अकसर लड़ खड़ाते हैं। चाल विशेष प्रकार की होती है।

पैरों को चौड़ा चौड़ा कर चलता है। अर्थात् एक दूसरे से बहुत दूर रखता है। ये इस लिए करता है कि उसके अस्थिर शरीर-रूपी स्तम्भ का गुरुता-केन्द्र आधार के बीच में रहे। यदि गुरुता-केन्द्र आधार से बाहर हो जाय तो चीज़ें गिर जाती हैं। या दूसरे शब्दों में कहा जाय तो हम यह कह सकते हैं कि रोगी अपने आप को गिरने से बचाने के लिए आधार का चौड़ा रखता है। जब आगे को पैर उठा कर रखता है तो ऐसा करते हुए पैरों को आगे की ओर फेंकता है और भूमि पर धड़ाम के साथ मारता है। ऐसा क्यों करता है, इसके ज्ञान के लिए कोई Applied physiology की पुस्तक देखिएगा।

Sensations (अनुभव-अनुभव शब्द का अर्थ Experience भी है, पर यहाँ पर इसका उल्लेख Sensations के अर्थों में है।) शरीर पर कई स्थान सुन्न मालूम देते हैं या ऐसा अनुभव होता है कि सूइयाँ चुभ रही हैं। ये Sensations ख़ास कर पैर के तलुओं में अनुभव होते हैं। और रोगी ये शिकायत करता है कि उसे ऊन पर चलने का सा अनुभव होता है।

नोट—Anæsthesia और Hyperæsthesia (अनुभव नाश, और अनुभव की अधिकता) दोनों लक्षण उपस्थित होते हैं। Bone Vibrations (अस्थि-वेपन) की sense भी लुप्त हो जाती है।

Pain (पीड़ाएँ)—(क) कड़कती पीड़ाएँ (Lightening pains) ये पीड़ाएँ बिजली की कड़क की तरह क्षणिक और एक जगह से दूसरी ओर जाती हुई सी अनुभव होती हैं। कड़क से ये मतलब नहीं है कि इन में किसी प्रकार का शब्द

होता है। पर बहुत तीव्र होती हैं और अकसर एक ही जगह पर बार बार होती हैं।

(ख) स्थायी पीड़ाएँ—ये स्थायी पीड़ाएँ अकसर Epigastric region (वक्षोऽस्थि के नीचे के प्रदेश) में पेटी से भिंचने की तरह की होती हैं। या (Sciatica) गृध्रसी की तरह पाँव की पिण्डलियों में होती हैं।

पीड़ाक्रम (पीड़ानां आक्रमः—पीड़ाक्रमः) या Crises-ये एक प्रकार के पीड़ाओं के आक्रमण सहवर्ती लक्षणों के साथ प्रगट होते हैं। निम्न प्रकार के Crises होते हैं।

(१) Gastric या आमाशयस्थ—इसमें आमाशय के देश में पीड़ा होती है और उल्टिएँ आती हैं। रक्त-वमन और बे-होशी (Fainting) तक भी हो जाते हैं।

(२) Laryngeal (स्वरयन्त्रस्थ)—इसमें श्वास लेने में काठिन्य होता है। खाँसी आती है और स्वर यन्त्र के देश में पीड़ा होती है।

(३) Intestinal (आन्त्रस्थ)—इस में अतिसार होता है और उदरशूल (Colic) होती है।

(४) Rectal—(गुदस्थ) इस में रोगी बार बार टट्टी फिरने के लिए ज़ोर लगाता है। और गुदा में पीड़ा होती है (Tenesmus)।

(५) Renal and vesical—(वृक्कस्थ और मूत्राशयस्थ)—Suprapubic region (विटप संधि से ऊपर के प्रदेश) में दर्द होती है। मूत्र बारबार आता है।

(६) Urethral—(मूत्र-प्रणालिस्थ) पेशाब करते हुए मूत्र-प्रणाली में पीड़ा उठती है। (Strangury)।

(७) Nasal –(नासस्थ) छीकें बहुत आती हैं।

(८) Cardiac—(हृदयस्थ) हृदय के सामने के प्रदेश में दर्द होती है।

मूत्ररोध रखने में अशक्यता—(Incontinence of urine)—इस लक्षण के प्रारम्भ से पहिले मूत्र बार बार आने लगता है।

Optic atrophy—द्वितीय वातिकनाड़ी जिस की वजह से हम देखते हैं, आक्रान्त हो जाती है। Optic disc, Ophthalmoscope से देखने पर सफेद दिखाई देती है। शुरू शुरू में दृष्टि कमज़ोर हो जाती है (Dimness of vision)। इस रोग के प्रारम्भ के लक्षणों में से यह एक लक्षण है।

अक्षिसम्बन्धी अन्य लक्षण—द्वि-प्रतिम-दर्शन (चीज़ों की प्रतिमाओं का दो दो कर के दिखाई देना—Diplopia), ऊपर की पलकों का गिरना अर्थात् वर्त्म-च्युति (Ptosis)।

कुछ पहिचानें जो उपरोक्त Incoordination को या Sense of position की शक्ति के नाश को साबत करती हैं, करवानी चाहिए।

(१) रोगी को एक सीधी लकीर पर चलने को कहना चाहिए। ये देखना चाहिए कि वह ऐसा करने में समर्थ है कि नहीं ?

(२) रोगी को अपने एक हाथ से आँखें बन्द कर के दूसरे हाथ की तर्जनी से नाक की नोक छूने को कहना

चाहिए। (Finger nose test)

यदि Tendo-Achellis को दबाया जाय या Ulnar nerve को दबाया जाय तो रोगी को कोई पीड़ा नहीं होती है। स्वस्थ पुरुषों में पीड़ा होती है। Tendo-Achellis (स्नायु या कण्डरा) गुल्फ-सन्धि के पीछे के भाग में होती है। इस लक्षण को Abadie's-sign (अबाड़ीज् लक्षण) कहते हैं। Ulnar nerve को कफोणि के पीछे और मध्य की ओर दबा कर देखा जाता है। इसे Biernacki's लक्षण कहते हैं।

Impotence (नपुंसकता)—पहिले कुछ अरसे तक हुशियारी रहती है, फिर उस के बाद नपुंसकता हो जाती है।

Dystrophies—क्षीणता, या Atrophic लक्षण भी होते हैं। जैसे कि Charcot's Joints, पैर के छिद्र करने वाले व्रण (Perforating Ulcers), और शय्या-व्रण (Bed sores) हो जाते हैं।

नोट—रक्त या वातिक द्रव या दोनों वासरमैन Positive होते हैं। इन के विषय में परिशिष्ट में और भी लिखा जायगा।

General Paralysis of Insane (G. P. I.)

सार्वदैहिक—पक्षाघात

इस रोग के भी केवल कुछ लक्षणों का ही उल्लेख किया जायगा।—

इस में मस्तिष्क के वल्क (Cortex) के भूरे पदार्थ (Grey

matter) की Degeneration (प्रतिजन्यता) हो जाती है। ये Degeneration विशेषत: पूर्ववर्ती खण्डों (Frontal lobes) में होती है। मृत्यु प्राय: रोग के लक्षणों के प्रगट होने के ५ साल बाद हो जाती है।

ये रोग भारत में कितनी संख्या में रोगियों को होता है, इसके विषय में डाक्टर लॉजपैच निम्न वाक्य अपनी पुस्तक "A manual of mental diseases" में लिखते हैं। डाक्टर साहब लाहौर के पागलखाने के वर्तमान अध्यक्ष हैं।

"ग्रन्थकर्ता (डाक्टर लाँजपैच महोदय) ने पिछले बारह सालों में लगभग ५००० की संख्या में उन्माद के रोगियों को अपने पागलखाने में इलाज के लिए दाखिल किया है। ग्रन्थकर्ता तीन साल तक स्काटलैंड के पागलों के चिकित्सालय में भी कार्य करता रहा है। वहाँ सार्वदैहिक पक्षाघात से ग्रस्त रोगियों को देखने और इस रोग सम्बन्धी मुख्य लक्षणों की खासी पहिचान करने का अच्छा तजर्बा हासिल किया है। परन्तु उपरोक्त ५००० हिन्दुस्तानी रोगियों में केवल २ ही ऐसे रोगी थे जिनमें संतोष पूर्वक कहा जा सकता था, कि वे इसी रोग से ग्रस्त थे। यद्यपि अन्य उन्माद-चिकित्सक इन रोगियों की संख्या को उपरोक्त संख्या से अधिक बताते हैं, पर इस में कतई सन्देह नहीं है कि ये रोग भारत में बिल्कुल न के बराबर है। जब कि इस रोग की चिकित्सा विधि, जिसमें कि मलेरिया-ग्रस्त मच्छरों से रोगियों को डसवा कर चिकित्सा की जाती है, अभी अपनी विकासावस्था में ही थी तब ग्रन्थकर्ता ने एक लेख लिखा था। उसमें यह भली प्रकार दर्शा दिया गया था कि

भारत में मलेरिया (जो कि भारत में सर्वव्यापी है) इस रोग के लिए प्रतिषेधात्मक कार्य करता है परन्तु...इत्यादि'।

डाक्टर लॉञपैच महोदय के लिखने से ये स्पष्ट है कि भारत में ये रोग सर्वथा ही नहीं है या न के बराबर है। चाहे इस का कारण विषम-ज्वर (Malaria) हो, या भारत की सामाजिक अवस्थाएँ (Social conditions) हों, हमें इस बात से बहस नहीं है। चूंकि अभी तक हमारे पास बीमारी की पूरी २ Statistics (गणनाएँ) नहीं हैं. अतः हम नहीं कह सकते हैं कि वस्तुतस्तु भारत में कितने मनुष्य इस रोग से ग्रस्त होते हैं। इस लिए इस विवादास्पद विषय पर इस समय कोई सम्मति नहीं प्रगट की जा सकती है। चूंकि भारत में इस रोग के रोगी बहुत ही कम होते हैं इसलिए इस रोग के विषय में बहुत कम लिखा जायगा।

इस रोग के रोगी तीन अवस्थाओं में से गुज़रते हैं।

(१) प्रारम्भिक अवस्था (Prodromal stage).

(२) रोगवृद्धि की अवस्था (Expansion stage).

(३) प्रतिजन्यता की अवस्था (Degenerative stage).

रोगी प्रथम अवस्था से दूसरी अवस्था में तब प्रविष्ट होते हैं, जब कि Convulsions (आक्षेप) प्रारम्भ होने लगें। द्वितीयावस्था से तृतीयावस्था में तब प्रविष्ट होते हैं जब कि मलत्याग इच्छाधीन न रहे।

लक्षण—(१) मानसिक लक्षण—मानसिक शक्तियों का नाश (Dementia) धीरे २ बढ़ता जाता है। Dementia शब्द का ठीक ठीक अभिप्राय समझने के लिए किसी

Mental diseases (उन्माद रोगों) की पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए। रोगी ये नहीं समझ सकता कि वो मानसिक दोषों से युक्त है। Mental exaltation (इसका मतलब समझाया जा चुका है।) उपस्थित होता है।

(२) जानु-वेग बढ़ जाते हैं। Tabes में Westphal's sign उपस्थित होता है।

(३) पुतलिएँ (Pupils) बराबर नहीं होती हैं। उनका किनारा अनियमित (Irregular) होता है। प्रकाश को देखकर धीरे २ सिकुड़तो हैं, या नहीं सिकुड़ती हैं। परन्तु Accomodation की प्रति-क्रिया (इसका वर्णन पहिले किया जा चुका है।) उपस्थित होती है।

(४) मांस-पेशियाँ—मांस-पेशियों का आघा[illegible] (Muscular paralysis) धीरे २ बढ़ता जाता है। जिह्वा और चेहरे की मांस-पेशियों में कम्पन (trombone) होते हैं।

(५) वाक्-शक्ति (speech)—रोगी बड़ा हिचक हिचक के बोलता है, तुतलाता है, कई कई अक्षर खा जाता है, और सरांता (Slurs) है। ओष्ट से बोले जाने वाले अक्षरों में कठिनाई होती है, इसलिए निम्न शब्दों को बुलवाना चाहिए। Hopping hippopotamus, Irish constibulatory, British constitution और पापात्मक।

(६) लेख (Hand writing)—हाथ से लिखने पर हाथ कांपने की वजह से ये लेख बड़े विचित्र से लिखे जाते हैं। अकसर शब्दों के पिछले अक्षर छुट जाते हैं।

(नोट—Exaltation शब्द का अर्थ समझने के लिये, देखो मस्तिष्क-फिरंग के लक्षण।)

नौवाँ अध्याय

पैदाइशी फिरंग (Congenital Syphilis)

पैदाइशी फिरंग दो प्रकार का होता है।

(१) जो कि गर्भ होने से पहिले हुआ हो। अर्थात् भ्रूण के, भ्रूण की अवस्था में आने के आदि में हुआ हो। यही असली पैत्रिक फिरंग है।

ये तीन प्रकार का होता है।

(क) उस सहवास के समय जब कि गर्भ हुआ है, माता पिता दोनों ही फिरंगरोग ग्रस्त थे।

(ख) उस समय सिर्फ पिता ही फिरंग रोगी था।

(ग) उस समय केवल माता ही फिरंग रोगिणी थी।

(२) गर्भ होने के बाद—यदि गर्भावस्था में माता को संयोग से या किसी दूसरे तरीके से फिरंग हो जाय, तो माता का गर्भ भी फिरंग रोग से ग्रस्त हो जाता है।

गर्भिणी पर फिरंग रोग का क्या प्रभाव होता है या एतत् सम्बन्धित विषय पर विचार इस अध्याय के अन्त में किया जायगा।

पैदाइशी फिरंग के लक्षणों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जायगा।

(१) गर्भाशय में प्राप्त हुए लक्षण। अर्थात् गर्भाशय में होने वाले और जन्म के समय उपस्थित लक्षण। इनके साथ ही

थापी या अपरा (Placenta)सम्बन्धी लक्षणों का भी बयान किया जायगा।

(२) तीन से चार हफ़्ते के अन्दर होने वाले लक्षण।

(३) तीन से चार महीने में होने वाले लक्षण।

(४) छे से १२ महीने के अन्दर होने।वाले लक्षण।

(५) द्वितीय वर्ष में होने वाले।

(६) इसके बाद के अर्थात् बाल्यावस्था और बाल्यावस्था के बाद में प्रगट होने वाले।

(१) जन्म समय—

(क) थापी-सम्बन्धी—थापी बड़ी और अधिक भारी होती है। थापी और बच्चे में भार का सम्बन्ध १: ६ होता है। परन्तु फिरंग-रोगी में १:४ या १: ३ रह जाता है। थापी अंगुलियों के बीच दबाने से बड़ी जल्दी भुर जाती है (Friable)। इसका रंग हलका लाल होता है। इस में कई पीले पीले से बड़े बड़े (डबखड़ब्बे) धब्बे पड़े हुए होते हैं।

ख. बच्चे सम्बन्धी—

१. बूढ़े आदमी की सी शकल होता है। सारी त्वचा झुलसी हुई और झुर्रियों दार होती है।

२. रंग पीला सा (Cafe au lait) होता है।

३. बच्चा छोटा और दुबला होता है।

४. यकृत् और प्लीहा बढ़े हुए होते हैं।

५. Syphilitic Pemphigus होता है। अर्थात् जिस्म पर मोटे २ छाले से पड़े होते हैं। छाले मुख्यतः हाथों और पैरों के तलुओं पर होते हैं। इन छालों को जब ये छोटे

होते हैं और इन में पूय भी होती है Pustules कहते हैं। बड़े २ छालों के साथ Pustules भी उपस्थित होते हैं।

६. सिर पर बहुत से बालों का गुच्छा सा होता है। इसे Syphilitic mop कहते हैं।

७. फुफ्फुसों में Fibrosis बहुत होता है, इस कारण इस तरह के Pneumonia (फुफ्फुस-शोथ) को White pneumonia कहते हैं।

सहज फिरंग से ग्रस्त फिरंग के रोगी केवल एक तिहाई संख्या में ही जन्म पर उपरोक्त फिरंग के लक्षण प्रगट करते हैं। शेष दो तिहाई के शरीर में लक्षण बाद में प्रगट होते हैं।

(२), (३) तीन से चार हफ़्ते तक होने वाले, और तीन से चार महीने तक होने वाले लक्षणों को नीचे लिखा जायगा। ये नीचे लिखे लक्षण जन्म से लेकर ६ महीने पर्यन्त तक के हैं। उपरोक्त दोनों प्रकार के लक्षणों का भिन्न समूहों में एकत्री-करण भी एक जगह दे दिया जायगा।

१. बच्चे का भार एक दम घटने लगता है। जो बच्चा पहिले बिलकुल स्वस्थ सा था, उस का उचित पोषण के होने पर भी भार घटना शुरू हो जाता है। वह पाण्डु-ग्रस्त (Anæmic) और दुर्बल हो जाता है। चिड़ चिड़ा हो जाता है। उसे नींद कम आती है (Sleeplessness)। नींद कम आने का या चिड़चिड़ाहट का कोई भी प्रत्यक्ष कारण उपस्थित नहीं होता है, पर फिर भी ये लक्षण उपस्थित होते हैं।

२. मुँह के चारों ओर होंठों की श्लेष्म-कला आक्रान्त

होने के कारण चीर चीर से (Rhagades) पड़ जाते हैं। और जब ये अच्छे होते हैं, ता इन के निशान (Scars) हमेशा के लिए रह जाते हैं।

नोट—यह स्मरण रहे कि मुख के चारों ओर के ये चीर इस रोग की रोग-विनिश्चयक (Diagnostic) निशानी है।

३. नाक में श्लेष्म-कला की शोथ हो जाती है। इस कारण छींकें बहुत आती हैं।

४. मध्य-कर्ण (Middle ear) की शोथ हो जाती है, जिसे Otitis media कहते हैं।

५. मुख की श्लेष्म-कला पर Mucous patches (सफेद २ से छोटे २ दाग) पड़ जाते हैं।

६. स्वरयन्त्र की श्लेष्म-कला के आक्रान्त हो जाने के कारण बच्चे का चीखना कुछ मोटा और भारी सा (Hoarse cry) हो जाता है। गुदा के चारों ओर Condylomata (इन का वर्णन पहिले किया जा चुका है।) हो जाते हैं।

७. शरीर पर किसी भी प्रकार के स्फोट जैसे कि आम मनुष्यों में युवावस्था में दिखाई देते हैं, हो सकते हैं। पर ज़्यादातर Macular (इस शब्द का वर्णन पहिले किया जा चुका है) स्फोट होते हैं। ज़्यादातर ये स्फोट नितम्बों (Buttocks) पर, वंक्षण (Groins) और जांघों के अन्दर की ओर निकलते हैं। और लाल Macular variety के होते हैं। इन्हें Syphilitic areola कहा जाता है।

८. तिल्ली बढ़ी हुई होती है।

९. आंखों का कृष्णावरण (Choroid coat) और तारा-

मण्डल (Iris) भी शोथ-युक्त हो जाते हैं ।

१०. पेशाब के रस्ते लाल, खून की Hæmoglobin (रक्त-रञ्जक पदार्थ) से रंगा हुआ मूत्र आक्रमों में आता है। (Poroxysmal Hæmoglobinuria).

११. Epiphysitis—लम्बी अस्थियों के सिरों को Epiphysis कहते हैं। Epiphysis मोटे और शोथ युक्त हो जाते हैं। इस Epiphysitis के कारण रोगी हाथ पांवों को नहीं हिलाता है। इस से ऐसा प्रतीत होता है कि रोगी को आघात हो गया है।

डाक्टर ब्यूमौन्ट ने अपनी काय-चिकित्सा की किताब Essentials of medicine for practitioners and students में उपरोक्त लक्षणों को समय की अवधियों के अनुसार निम्न प्रकार से बयान किया है :—

(२) तीन से चार हफ़्ते तक—Syphilitic roseola (especially round the buttocks); snuffles due to rhinitis; otitis media, choroiditis and iritis, paroxysmal hæmoglobinuria.

(३) तीन से चार महीने तक—Epiphysitis, causing apparent paralysis of limbs (pseudo-paresis), rhagades (fissures) at the angle of mouth, which leave radiating scars on healing. Condylomata in the perineum or under the arms. Enlargement of the spleen and liver. Gumma of the testicle.

इस के बाद कुछ और लक्षण प्रगट होते हैं।

(क) मस्तिष्क के आवरणों की शोथ हो जाती है (syphilitic meningitis.)।

(ख) वृक्कों की शोथ हो जाती है। (Nephritis)

(ग) अण्डों की शोथ हो जाती है। (Orchitis)

(घ) अंगुलियाँ कुप्पियों की तरह की सी हो जाती हैं। इन अंगुलियों की शोथ को (Dactylitis) कहते हैं।

(ङ) पूर्व-कपालास्थि, तथा पार्श्व-कपालास्थियाँ (Frontal and parietal bones) के अस्थ्यावरणों (Periosteum) की शोथ हो जाती है। ये अस्थ्यावरणों की शोथ अन्य अस्थियों में भी हो सकती है। पर कपाला स्थियों पर इस शोथ के कारण एक विशेष प्रकार के उभार से बन जाते हैं, जिन्हें Parrots nodes या Hot-cross-bun appearance के नाम से पुकारा जाता है। ये लक्षण अर्थात् Hot-cross-bun skull, अस्थि शोष (Rickets) की बीमारी में भी पाया जाता है।

(च) नखों के पार्श्वों में और ऊपर की ओर अर्थात् परिधि पर जहाँ से कि नख निकलते हैं, शोथ हो जाती है। इन्हें Paronychia और Onychia कहते हैं। Paronychia को नख-पार्श्व-परिधि शोथ और Onychia को नख-परिधि-शोथ के नामों से पुकारा जा सकता है। नखों में अकसर किसी किस्म का नुक्स नहीं पाया जाता है। पर कभी कभी भुर भुरे (Brittle) दन-दाने दार (Jagged), टेढ़े मेढ़े, ऊपर नीचे उठे हुए (Pitted) या

ज़्यादा मोटे, या बहुत पतले होते हैं।

(छ) बाल झड़ जाते हैं, ये बाल अकसर सिर के पासों और पीछे की ओर के झड़ते हैं। भौं के बाल भी अकसर झड़ जाते हैं।

(ज) नाक का पुल बैठ जाता है। ऐसे पुरुष को लोग पंजाबी में फीना कहते हैं। पाणिनी का सूत्र 'अवटीटञ् नाटच् भ्रटचः' याद आता है। अवनाट ऐसे ही पुरुष को कहा जाता है (Saddle bridge)।

(झ) सिर में वातिक-द्रव (Spinal fluid) के अधिक इकट्ठा हो जाने को (Hydrocephalus) कहते हैं।

(ञ) कई व्यक्ति Idiot हो जाते हैं। Idiocy एक विशेष प्रकार का उन्माद है इसे जानने के लिए किसी उन्माद रोग की पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए।

डाक्टर ब्यूमौन्ट की उपरोक्त पुस्तक के अनुसार समय की अवधिपूर्वक प्रगट होने वाले लक्षणों की परिगणना निम्न प्रकार है।

(४) छे से १२ महीने तक होने वाले लक्षण—

(क) Iritis (ख) Parrots nodes (ग) Craniotabes (इस लक्षण से ये मतलब है कि कपालास्थियों में और विशेषतः पृष्ट-कपालास्थि में छोटे छोटे अस्थि के भाग नरम और हाथ से दबाने पर दबने वाले हो जाते हैं।)

(५) द्वितीय साल में होने वाले—

(क) Dactylitis. (हाथों या पावों की अंगुलियाँ सूज जाती हैं।)

(ख) Saddle bridge (फीनी नाक)।

(ग) Hydrocephalus (मस्तिष्क-द्रवाधिक्य)।

(घ) Idiocy (मूढ़ोन्माद)

(६) इसके बाद अब बाल्यावस्था या तत्पश्चात् प्रगट होने वाले लक्षणों का वर्णन किया जायगा।

१. Keratitis-अक्षि के श्वेतावरण (Sclerotic coat) के पारदर्शक भाग को जो कनीनिका के सामने होता है। Cornea (पारदर्शक पटल) कहते हैं। इस पटल की शोथ को Keratitis कहते हैं। सहज-फिरंगियों में पारदर्शक-पटल-शोथ ६ से १२ सालों के बीच होती है।

२. दन्त—(i) सहज फिरंगियों के स्थायी दान्तों में ऊपर के जबड़े के मध्य के दो काटने वाले दांत कुछ विशेषताएँ प्रगट करते हैं, जिनका कि वर्णन पहिले पहल हुचिसन महोदय ने किया था। उन के नाम पर इन दांतों को पुकारा जाता है (Hutchison's teeth)। विशेषताएँ निम्न होती हैं।

(क) ये दाँत आधार पर चौड़े और नीचे की ओर सिरे पर छोटे होते हैं। अर्थात् Peg shaped होते हैं।

(ख) इन के स्वतन्त्र किनारे ऊपर की ओर गोलाई में खुचे हुए से नज़र आते हैं। इसलिए, इन दाँतों को Notched कहते हैं। या ये किनारे रन्दे के फलक की धार की तरह Bevelled होते हैं।

(ग) दाँत एक दूसरे से छिदे छिदे होते हैं। अर्थात् कुछ दूर दूर होते हैं। छिदे से ये मतलब नहीं कि छिद्रित होते हैं।

(ii) Morris's or Moon's teeth—पहिली जाड़े (First molar teeth) गुम्बद (Dome) की शकल

की होती हैं। क्योंकि इनका ताज (चौड़ा सिरा) विकसित नहीं हो सका होता इसीलिए ये गुम्बद की सी शक्ल की रह जाती है।

३. बधिरता—अन्तःकर्ण (Internal ear) में Gumma बन जाने से अन्तः कर्ण कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। और इसलिए बधिरता हो जाती है।

४. अस्थिपर्यावरण शोथ (Periosteitis)—ये क्या होती है? इसका निर्देश पहिले किया जाचुका है। इसी वजह से मोटी जंघास्थियाँ (Tibiæ) छोटी तलवारों की तरह मुड़ सी जाती हैं। इन्हें तब Sabre tibia (एक वचन) कह कर पुकारते हैं।

५. सन्धियों में—पीड़ा रहित शोफ हो जाती है। शोफ से तात्पर्य Swelling का लिया गया है। (इस पुस्तक में शोथ से तात्पर्य Inflammation का लिया गया है। शोफ शब्द यहाँ पर केवल-मात्र Swelling को प्रगट करने के लिए लिखा गया है।) मुख्य-सन्धि जिस में ये आक्रमण बहुधा होता है, जानु-सन्धि है। (Hydrarthrosis of knee.)

६. वात-संस्थान भी आक्रान्त हो जाता है। संप्राप्त-फिरंग (Acquired syphilis) की तुरीयावस्था में ये बताया गया था कि Tabes dorsalis और General paralysis of insane (सार्वदैहिक पक्षाघात), रोग (फिरंग) प्रारम्भ होने के बाद के ६ से १२ साल के अरसे में, अकसर १०वें साल प्रगट होते हैं। अब यहाँ पर ये बताना है कि यही

दोनों रोग, Adults (प्रौढ़ मनुष्यों) के इलावा, शिशुकाल में भी देखे जाते हैं। ये शिशुकाल वाले, इन रोगों के रोगी या तो सहज-फिरंगी होते हैं, या शिशुकाल में रोग संप्राप्त करने वाले फिरंग रोगी होते हैं। इन फिरंगियों की Tabes dorsalis को Juvenile या किशोरीय Tabes dorsalis के नाम से पुकारा जाता है। यद्यपि पहिले ये नहीं लिखा गया था कि Tabes दो प्रकार की होती है। पर यहाँ पर ये निर्देश कर दिया जाता है। इस प्रकार Tabes के दो भेद हुए—

(१) Juvenile या किशोरीय।

(२) Adult (जो ३० से ३५ वर्ष की अवस्था में होती है।)

उपरोक्त विचार से ये स्पष्ट हुआ कि बाल्यावस्था और किशोरावस्थाओं में भी वातिक लक्षण जो Tabes और General paralysis of insane के से होते हैं, प्राप्त होते हैं।

(७) मूत्राधिक्य या मूत्रमेह—(Diabetes Insipidus) भी इस सहज फिरंग में दृष्टिगोचर होता है। Physiology (शरीर क्रिया विज्ञान) की पुस्तकों को पढ़ने से पता लगेगा कि मस्तिष्क के आधार पर Hypothalamus में Diuresis (मूत्रलता) का भी एक केन्द्र होता है। जब फिरंग इस के समीपवर्ती प्रदेश में अपना आक्रमण करे तो मूत्राधिक्य या मूत्रमेह का होना स्वाभाविक ही है। सो इस का कारण आधारवर्ती मस्तिष्क की आवरण-कला का फिरंगरोगाक्रान्त होना होता है। Basal syphilitic meningitis।

(८) वासरमैन की (रक्तीय) प्रतिक्रिया १२ से १४ वर्ष तक धन चिह्न वाली होती है। ये प्रतिक्रिया हो सकता है कि इस आयु के बाद इलाज के बिना भी ऋण चिह्न युक्त हो जाय। देखो अध्याय २, सहज फिरंगियों का विवाह सम्बन्धी विचार।

(९) वातिक-द्रव भी ४० प्रतिशतक रोगियों में फिरंग रोग की साक्षी देता है। इसका विचार किसी अगले अध्याय या परिशिष्ट में किया जायगा।

इस अध्याय के शुरु में ये लिखा गया था कि—"गर्भिणी पर फिरंग रोग का क्या प्रभाव होता है? या इस सम्बन्धी विषय पर इस अध्याय के अन्त में विचार किया जायगा।" सो अब इस विषय पर विचार प्रारम्भ होता है।—

Colle's Law—कई वार पिता को फिरंग होता है। और उससे जो बच्चा पैदा होता है उसे भी फिरंग होता है। पर माता फिरंग के रोग से बच जाती है। इस पिता के फिरंगी लड़के को अगर मां अपना दूध पिलाए तो उसे दूध पिलाने पर (सदा स्पर्श युक्त रहने पर) भी फिरंग नहीं होता है। पर अगर इसी लड़के को कोई स्वस्थ धाय (Wet nurse) दूध पिलाए तो उसे हो जाता है। इस का कारण यह बताया जाता है कि माता एक प्रकार के सुषुप्त-फिरंग (Latent syphilis) से आक्रान्त होती है और एक वार आक्रान्त हो जाने के बाद उसमें फिरंग के विरुद्ध प्रतिशक्ति (Immunity) प्रादुर्भूत हो जाती है।

Profeta's Law—इसी प्रकार यदि पिता फिरंग रोग ग्रस्त हो और उसके संयोग से माता भी फिरंग रोग से ग्रस्त हो

जाय, पर उन से पैदा हुआ बच्चा फिरंग रोग के लक्षण न प्रगट करे तो कहते हैं कि ये Profeta's law का पालन कर रहा है। इस का कारण ये समझा जाता है कि बच्चे में सुषुप्त-फिरंग के कारण प्रतिशक्ति पैदा हो गई है और फिरंग के लक्षण प्रगट नहीं हुए हैं।

Diday's law of Decrease—ये नियम निरीक्षण पर आश्रित है। औरतों में यह देखा गया है कि फिरंग रोग से आक्रान्त होने के बाद जब गर्भ होते हैं तो पहिले वो शुरु के महीनों में कच्चे ही निकल जाते हैं, फिर बच्चे मरे हुए पैदा होने लगते हैं। तदनन्तर फिरंग रोग से आक्रान्त जीवित बच्चे पैदा होते हैं, और बाद में कम फिरंग रोग के लक्षणों से आक्रान्त हुए २ बच्चे पैदा होते हैं। इस के बाद इन फिरंग रोगियों के बच्चे भी धीरे २ फिरंग रोग का रंग छोड़ते जाते हैं और आखिरकार एक सन्तति होती है जो इस रोग से स्वतन्त्र होती है। इसी प्रकार बच्चों में भी देखा गया है कि वासरमैन जो सहज फिरंगयों में शिशुकाल में + होता है Puberty के बाद—हो जाता है। सो इस नियम से यह सिद्ध हुआ कि 'समय' फिरंग का काल है (काल फिरंग का काल है)। अर्थात् काल का बीतना शनैः २ फिरंग का अन्त करता जाता है। इसे Diday's law of decrease कहते हैं।

दसवाँ अध्याय

क्रिया-शाला रोग-विनिश्चय

(Laboratory Diagnosis).

आधुनिक युग में इस रोग का क्रियाशाला रोग-विनिश्चय बहुत आवश्यक है।

यद्यपि रोग के लक्षणों के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है परन्तु बहुत दफ़ा इस रोग के लक्षणों का इतना कुछ ज्ञान होते हुए भी रोग का पक्का निश्चय करना कठिन होता है और क्रिया-शाला की सहायता लेनी पड़ती है। कई वार लक्षणों के बूते पर किए गए विनिश्चय को और पक्का करने के लिये क्रियाशाला की गवाही दरकार होती है।

प्रथमावस्था में रोगी को Hard chancre होता है। Typical Hard chancre का वर्णन जिसे Hunterian chancre कहते हैं पीछे किया जा चुका है। पर रोगी, भिन्न २ प्रकार के प्रथमावस्था के फोड़ों को लेकर आते हैं जिनका कि सादृश्य Hunterian chancre से बहुत कम होता है और ऐसी अवस्थाओं में क्रियाशाला का आश्रय लेना पड़ता है। कई वार देखा गया है कि कई रोगियों में फोड़ा तो बिलकुल Hunterian chancre जैसा होता है पर वास्तव में रोगी फिरंग का शिकार नहीं होता है। ऐसी हालत में

भी फैसला क्रियाशाला ही करती है। बहुधा पूयजनक जीवाणुओं का आक्रमण Hunterian chancre की शकल को बिलकुल ही बदल डालता है, तो सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्र ही निर्णायक के तौर पर बिठाया जाता है।

इसके बाद, द्वितीयावस्था के कई बीमार ऐसे आते हैं जिनके स्फोट कि बिलकुल फिरंग के से होते हैं। परन्तु पूर्व का इतिवृत्त संदेहास्पद सा होता है। बहुधा रोगी रोग के विषय में झूठ इतिवृत्त भी देते हैं। अगर उन्हें धमकाया जाय या बीमारी के नाम पर अच्छे इलाज के तभी पूर्ण रूप से सफल होने की अपील की जाय जब कि वो ठीक २ बीमारी का बयान करेंगे तो अपनी सच्ची राम कहानी सुना देते हैं। झूठी और सच्ची कहानी में ज़मीन आसमान का फ़र्क होता है। कई बार रोगी आदर वाले व्यक्ति होते हैं और सब तरह के उपायों के बाद भी अपना किस्सा नहीं कहने में आते हैं। ज़लील होने से बचने के लिए झूठी बातें ही दोहराते जाते हैं, तो हमें क्रियाशाला का आश्रय लेना पड़ता है। क्रियाशाला उन्हें अच्छी फटकार सुनाती हैं। उन्हें मालूम होना चाहिए कि वो आधुनिक विज्ञान को आसानी से नहीं धोखा दे सकते हैं।

इसके बाद कई ऐसे मनुष्य होते हैं कि अगर उनसे उत्तर सूचक (Leading) प्रश्न किए जाँय तो वो हर प्रश्न का वैसा ही उत्तर देते जाते हैं। उनकी बातों पर यकीन करना बहुत कठिन हो जाता है इतिवृत्त की सहायता अनुपयोगी हो जाती है। तो उनमें भी क्रिया-शाला का सहारा लेना पड़ता है।

जब रोगी तृतीयावस्था में या तुरीयावस्था में शरीर के किसी अंग के Gumma के लक्षण लेकर आता है या महाधमनी रक्त-प्रत्यावर्तन से ग्रस्त होकर आता है या वातिक संस्थान के लक्षणों को लेकर आता है तब भी क्रिया-शाला का रोग विनिश्चय बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है।

कई बीमारों को जिन्हें अक्षि में फिरंग के विकार पैदा होकर जैसे कि Iritis, Keratitis इत्यादि (इनका वर्णन पहिले किया जा चुका है) दुःख देरहे हों तो रोग विनिश्चय के लिए, फिरंग के स्पष्ट इतिवृत्त की अनुपस्थिति में क्रिया शाला से अपील करनी पड़ती है।

रोग की चिकित्सा में भी क्रियाशाला के निर्णय की माँग बहुत ज़बरदस्त है। इसका बहुत बड़ा हाथ है। अपूर्ण रूप से चिकित्सा किए गए रोगियों का पता भी क्रियाशाला देती है। पूर्ण चिकित्सा का फैसला भी पक्के तौर पर क्रियाशाला ही देती है।

विवाह के लिए कोई रोगी योग्य हुआ है कि नहीं? इसका क्रियाशाला ही संतोष-जनक उत्तर देती है।

गर्भिणी को जिसे फिरंग का शक हो सन्तति की रक्षा के लिए क्रियाशाला से मदद लेनी पड़ती है।

हर प्रकार के रोग के शक में सन्देह निवारण के लिए क्रियाशाला का आसरा लेना पड़ता है। इस लिए क्रियाशाला के रोग विनिश्चय की ज़रा भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

क्रियाशाला के रोग विनिश्चय की उपेक्षा करने पर चिकित्सक को हो सकता है कि अदालतों के धक्के खाने पड़ेंगे,

एक क्षण के लिए भी न भूलना चाहिए ।

क्रियाशाला के रोग विनिश्चय को तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है—

(१) जीवाणु का दर्शन

(२) रक्त परीक्षा

(३) वातिक द्रव (Cerebrospinal fluid) की परीक्षा।

जीवाणु दर्शन—जीवाणु (इस शब्द को हर जगह पर प्रयुक्त किया गया है। कृमि शब्द का प्रयोग जान कर नहीं किया गया है। कृमि शब्द से Worms का आशय समझना चाहिए। और जीवाणु शब्द को Bacteria शब्द के लिए Reserve रखना चाहिए।) जीवाणुओं का दर्शन दो अवस्थाओं में किया जाता है। एक तो स्फोटों व्रणों या गिल्टियों आदि से निकाले हुए रक्तवारि (Serum) में, दूसरे कई फिरंग के स्फोटों इत्यादि के (In the sections of the specimens taken from various lesions) कटे हुए पृष्ठों में। इन कटे हुए पृष्ठों में Levaditi या Warthim का रंगने का तरीका जीवाणुओं को देखने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। ये तरीके इस छोटी सी पुस्तक में नहीं दिए जा सकते हैं। बहुत जटिल (Complicated) हैं। इस लिए इनका निर्देश मात्र ही किया गया है। साधारण व्यवहार में भी इन्हें प्रयुक्त नहीं किया जाता है।

रक्तवारि में जीवाणुओं का दर्शन—प्रथमावस्था के फोड़ों को दबा कर थोड़ा सा रक्त-वारि निकाल लिया जाता है जोकि शीशे की Slide (चौकोर आयताकार पट्टी) पर लेकर फैला

दिया जाता है। इसी प्रकार रक्तवारि द्वितीयावस्था के स्फोटों से भी लिया जाता है। कई चिकित्सक प्रथमावस्था के फोड़े को साफ करके और गॉज़ (Gauze) के टुकड़े को रगड़ कर रक्तवारि निकालते हैं। यदि लसीकाग्रन्थियों से खून निकाल कर उसके रक्तवारि का निरीक्षण आवश्यक हो तो सूई से विद्ध (Puncture) करके निकाला जाता है। इन में से किसी भी तरीके से प्राप्त हुए रक्तवारि को शीशे की आयताकार पट्टी पर फैलाकर क्षुद्रवीक्षण यन्त्र से देखते हैं। इस जीवाणु का क्षुद्र-वीक्षण से देखना आसान नहीं होता है। विशेष तरीकों का इस्तेमाल करना पड़ता है। क्षुद्र-वीक्षण के नीचे लगे हुए दर्पण पर पड़े हुए प्रकाश को घनीभूत करके पार्श्वों में विक्षिप्त कर दिया जाता है ताकि ये प्रकाश शीशे की पट्टी में से होकर क्षुद्र, वीक्षण की वीक्षण-नालिका में से न गुज़रे। इस तरह करने से शीशे की पट्टी अन्धकारावृत दिखाई देती है और इस रोगके जीवाणु जो प्रकाश को बहुत कम विचलित करते हैं (are less refractile) अच्छी तरह नज़र आजाते हैं। वीक्षित क्षेत्र में इधर उधर दौड़ रहे होते हैं। इस तरह के देखने की प्रक्रिया को तमोप्रकाशन (Dark ground illumination) कह कर पुकारा जाता है। इस Dark ground illumination की विधि को विस्तार से जानने के लिए किसी जीवाणु-विज्ञान की पुस्तक का स्वाध्याय करना चाहिए।

यदि शीशे की पट्टी पर बनी हुई रक्तवारि की पृष्ठ (Film) को सुखा कर और रंग कर देखना अभीष्ट हो तो इंडियन-इंक से रंग कर देखा जाता है।

उपरोक्त Dark ground illumination वाले तरीके में ये लाभ है कि रंगना भी नहीं पड़ता है और जीवाणु चलते फिरते हुए दिखाई देते हैं जिनकी गति को देख कर उन्हें अन्य तत्सदृश कई जीवाणुओं से पहिचाना जा सकता है।

अब इन जीवाणुओं की शकल और गतियों के विषय में संक्षिप्त परिचय दिया जायगा। जब Dark ground illumination से इस जीवाणु को क्षुद्रवीक्षण यन्त्र द्वारा देखा जाता है तो ये जीवाणु चमकती हुई कुण्डलित चाँदी की तार की तरह नज़र आता है। इसकी लम्बाई ५ से २५ माइक्रोन होती है। (मिलिमीटर के १ हजारवें हिस्से को एक माइक्रोन कहते हैं और इसे म्यू लिखकर संकेत किया जाता है।) जीवाणु की कुण्डलियाँ अनियमित सी नहीं होती हैं परन्तु नियमित और समान दूरी पर होती हैं। और एक रक्त के रक्ताणु के व्यास में (७'४ म्यू होता है।) क़रीबन ७ कुण्डलियाँ आ सकती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक कुण्डली करीब दो एक म्यू लम्बी होती है। इनकी संख्या प्रत्येक जीवाणु में ५ से लेकर २५ तक होती है। और जीवाणु के सिरे पूंछ की तरह पतले और नोकदार होते हैं।

नोट—नियम यह है कि जब तक २ रक्ताणुओं के व्यास जितना लम्बा जीवाणु फ़िल्म में न मिले तब तक रोग का निश्चय नहीं करना चाहिए।

कई वार जीवाणु की कुण्डलियों के एक ओर के हिस्से ही प्रकाश में नज़र आते हैं। जीवाणु का शेष भाग Focus (फोकस) में नहीं होता है। तो ऐसा मालूम होता है कि एक बिन्दुओं की

पंक्ति सी वीक्षित क्षेत्र में उपस्थित है। इस पंक्ति से स्ट्रैप्टो कोकाई की पंक्तियों का भ्रम हो जाता है। ऐसी हालत में फोकस को ठीक कर लेना चाहिए।

एक बड़ी आवश्यक बात स्मरण रखनी चाहिए कि फिरंग का कुण्डली रूप जीवाणु गति युक्त, और शान्त होकर स्थित हुई, दोनों अवस्थाओं में कुण्डलियों को जैसे का तैसा बनाए रखता है। कहने का तात्पर्य ये है कि इसके निश्चल हो जाने पर अन्य बहुत से कुण्डलित जीवाणुओं की तरह इसकी कुण्डलियाँ जाती नहीं रहती हैं।

इस जीवाणु को अंग्रेज़ी में Spirochœta pallida कहते हैं क्योंकि Spirochœta से अर्थ कुण्डलीयुक्त जीवाणु से है और Pallida से मतलब ये है कि इसका रंगना बहुत कठिन होता है। उपरोक्त व्युत्पत्ति केवल मात्र वैयाकरणियों की दिलचस्पी के लिये लिख दी गई है।

कई बार वीक्षित क्षेत्र में दो दो जीवाणु आपस में सिरों से जुड़े हुए नज़र आते हैं और तब इनकी लम्बाई बहुत ही अधिक मालूम देती है। पर अगर रक्तवारि के साथ एक पानी की बूंद मिला दी जाय तो ये जीवाणु एक दूसरे से पृथक हो जाते हैं।

जीवाणु की गतियाँ—जीवाणु की गतियाँ रोगी के अपने रक्त-वारि में बहुत अधिक देर तक रहती हैं। और रक्त-वारि के साथ पानी या नॉरमल् सैलाइन (Normal saline) मिला देने से कम हो जाती हैं। रक्तवारि में गतियाँ तेज़ भी अधिक होती हैं और जीवाणु की कुण्डलियाँ होती भी अधिक समीप २

हैं। कई वार वीक्षित क्षेत्र में हवा से पैदा हुई तरंगों के कारण ही जीवाणु गति करता हुआ दृष्टि-गोचर होता है, परन्तु असल में गति नहीं कर रहा होता है। इस बात को ग़ौर से जाँच लेना चाहिये।

गतियां निम्न प्रकार की होती हैं :—

(१) मुड़ना।

(२) सर्प गति; ऊपर नीचे मुड़ना जैसे कि पानी की तरंगें चलती हैं।

(३) पेच की तरह की गति। जैसी कि हम पेच को घुमाते हुए करते हैं।

(४) Concertina-movements—तार के स्प्रिंग के खुलने और बन्द होने की सी गति जिसमें कि कभी स्प्रिंग के छल्ले पास आ जाते हैं और कभी दूर हो जाते हैं।

(५) स्थानिक कुण्डलियों को सकुचा कर चपटा सा कर देने वाली गति। यह बहुत कम देखने में आती है।

इस जीवाणु का अन्य इसी जैसे जीवाणुओं से भेद करने की विधि—

निम्न चार जीवाणुओं से अकसर धोखा हो सकता है।

(1) Sirochœta Dentium.

(2) Spirochœta pertenuis.

(3) Spirochœta balanitidis.

(4) Spirochœta Refringens.

Spirochœta Dentium—मुख में पाया जाता है।

जब कि प्रथमावस्था का फोड़ा होठों पर हो और रक्तवारि इस फोड़े से लिया हो तो Sp. Dentium से भेद करने की आवश्यकता होती है। पर ये छोटा होता है (५ से १० म्यू लम्बा) और इसकी कुण्डलियाँ गहरी होती हैं। ये प्रशान्तावस्था में भी Sp. pallida की तरह कुण्डलियों का रूप धारे रखता है।

Spirochœta pertenui, yaws एक बीमारी होती है ये उसका जीवाणु होता है। साधारण रूप से इसका भेद करना कठिन होता है। रोग जीवाणु विज्ञान के विशेष-वेत्ता ही इसे विभिन्न कर सकते हैं।

Sp. balanitidis और Refringens उत्पादक अंगों में अकसर पाए जाते हैं। Sp. balanitidis के दायरे ६ से १० होते हैं और इसकी गति भी बहुत भिन्न हाती है। Sp. Refringens ज़्यादा बड़ा, मोटा और लम्बा होता है। कुण्डलियाँ उथली होती हैं और गति Sp. pallida से अधिक तीव्र होती है।

क्षुद्रवीक्षण यन्त्र से किए रोग विनिश्चय के कई लाभ हैं:—

(१) तत्काल किया जा सकता है। और संदेह का निवारण झट पट हो सकता है।

(२) इस पर पूर्ण विश्वास किया जा सकता है।

यदि इस प्रकार के रोग-विनिश्चय से पहिले रोगी फिरंग रोग का, संखिये (Arsenic) वाला आधुनिक इलाज (जो Arsenobenzol से किया जाता है।) कराकर आया हो तो

फिर इस रोग विनिश्चय पर पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता। क्योंकि हो सकता है कि रोगी फिरंग-रोग से ग्रस्त भी हो पर इलाज के सबब से उसके फिरंग-रोग के फोड़े से रोग के जीवाणु दूर हो चुके हों।

पाठक, रक्त की और वातिक द्रव की परीक्षाओं का वर्णन पुस्तकान्त में संयोजित परिशिष्टों में देखने का कष्ट करें।

ग्यारवाँ अध्याय

चिकित्सा

फिरंग की चिकित्सा Allopathy में आजकल पाँच पदार्थों द्वारा की जाती है, जिनके नाम कि निम्न हैं।

(१) Mercury (पारद या इसके समास).

(२) Arsenic (संखिया या सोमल के समास).

(३) Bismuth (बिस्मथ या इसके समास).

(४) Iodine (नैल के समास).

(५) Sulphur (गन्धक या इस के समास).

इनमें से प्रत्येक का फिरंग की चिकित्सा में कितना २ स्थान है इस पर अभी विचार किया जायगा पर इससे पहिले चिकित्सा के विषय में कुछ साधारण बातें बता देनी आवश्यक हैं।

आपने देख लिया कि फिरंग की चिकित्सा तभी पूर्ण कही जा सकती है जब कि रोगी को रोग की अवस्थाओं के आक्रमण न होवें। भारत में फिरंग के रोगी प्रथमावस्था के बाद अकसर चिकित्सा कराने के लिये आते हैं। और Quacks (अल्हड़ वैद्यों) के पास जाकर या नाइयों के पास जाकर उन फोड़ों पर मलहमें लगवाते हैं। ये नाई वगैरह पारे की या और दूसरी तीसरी मलहमें लगा देते हैं और फोड़े धीरे २ अच्छे हो जाते हैं। अगर फोड़ा वैसे ही साफ रक्खा जाय तो कुछ अरसे बाद स्वयं ठीक हो जाता है पर कुछ लम्बा अरसा लगता है। और रोगी फोड़े के ठीक होने पर ये समझता है कि लो वह

रोग से अच्छा होगया। रोगियों को चाहिए कि वो विद्वान् और चिकित्सा-कुशल विज्ञ वैद्यों के पास जावें या समझदार और पढ़े हुए डाक्टरों (पाश्चात्य-चिकित्सा के विज्ञों) के पास जावें और बीमारी की समूल चिकित्सा करावें।

इस के बाद वे रोगी जो ये समझे हुए होते हैं कि आतशक तो अच्छा हो चुका है आतशक की द्वितीयावस्था से आक्रान्त होते हैं। उन्हें ये ख्याल होता है कि शायद खून खराब है कि जिससे शरीर पर जगह जगह फोड़े निकल रहे हैं। पर उन्हें ये नहीं पता कि ये खून की खराबी मामूली नहीं है परन्तु फिरंग के कारण हुई २ होती है। वे रोगी चिरायते वगैरह के काढ़े पीते रहते हैं और इधर उधर अल्हड़ वैद्यों के पास टक्कर मारते फिरते हैं। कहीं किसी ने पारे की या संखिये की मल्हम लगादी या कोई कुश्ता ऐसा वैसा खिला दिया और अटकलपच्चू इलाज होगया तो फिर बेफ़िकर हो जाते हैं। उन्हें ये नहीं मालूम होता है कि अभी फिरंग कुछ अरसे बाद फिर अपना मज़ा दिखाने वाला है। सो इस तरह अनेकों रोगी अपनी जीवनियों को बरबाद कर देते हैं। वो अपनी जीवनियों को नहीं बरबाद करते हैं पर रोग को जगह २ फैलाते हैं और अपने बालबच्चों को भी रोग की सौगात देजाते हैं।

आज कल की वैज्ञानिक रंग से रंगी हुई सभ्यता का कम से कम इतना तो लाभ अवश्य होना चाहिए कि जो रोगी इस रोग से आक्रान्त होवें उन्हें पूरी तरह से पता हो जावे कि वो कैसी बीमारी के शिकार हैं और रोग उन्हें किस किस तरह से अपना शिकार बनाएगा। और अगर राज्य कर्मचारी चाहें

और राजकीय सहायता हो सके तो कुल राज्य से इस बीमारी को दूर करने का राजकीय प्रबन्ध होना चाहिये ।

रोगी को आते के साथ ही उपरोक्त बातों का ज्ञान करा देना चाहिए उसे बता देना चाहिए कि असली इलाज दो चार दिन का नहीं है। अगर वो इस बीमारी से पूरी तरह मुक्त होना चाहता है तो उसे पूरा इलाज कराना चाहिए। वो जितनी जल्दी इलाज कराएगा। उतनी ही थोड़ी देर इलाज करने के बाद वो रोगमुक्त हो सकता है। अगर लग कर इलाज कराएगा तो रोगमुक्त जल्दी होगा अगर उपेक्षा करेगा या सुस्ती करेगा तो खुद अधिक दुःख उठाएगा । इलाज से उसका संक्रामक होने का समय भी बहुत कम होजाता है । दो सूचीवेधों (Injections) के बाद ही वो संक्रामकता से मुक्त होजाता है।

इसके अतिरिक्त चिकित्सक को ध्यान में रखना चाहिए कि हरेक रोगी का इलाज रोगी के रोग के अनुसार, उसके अपने डील डौल के अनुसार, उसकी औषधियों को सहन करने की शक्ति और औधषियों के अनुसार और औषधियों के रोगपरहुए प्रभावके अनुसार और रोगी किस अवस्था में चिकित्सक के पास आया है, इन सब पर आश्रित होता है। और क्योंकि ये सब बातें हरेक रोगी में भिन्न २ प्रकार की होती हैं, इसलिए इलाज भी कुछ न कुछ भिन्न २ होता है। सो किसी भी इलाज को जो आम तौर पर रोगियों के लिए सिलसिले वार बनाकर लिखा जाता है, प्रत्येक रोगी की विशेषताओं के अनुसार परिवर्तित कर लेना चाहिए। इस पुस्तक में यूरोप देश-वासियों के इलाज की विधि को लिखा जायगा। अर्थात् यूरोप में और विशेषतः इङ्गलैंड में

औषधि की किन मात्राओं को रोगियों में प्रयुक्त किया जाता है उन्हें लिखा जायगा । परन्तु चूंकि हम भारतवासी शरीर के लिहाज़ से भार में, क़द में और शारीरिक शक्ति में भी यूरोपवासियों से निर्बल होते हैं, (ये टिप्पणी जातीयता पर आक्षेप करने के ख्याल से नहीं लिखी गई है। परन्तु एक तथ्य को प्रगट किया गया है । वैज्ञानिक पुस्तकों में जातीय भावों के उद्गार में तथ्यता नहीं छिपाई जा सकती है।) इसलिए हमें इस पुस्तक में वर्णित यूरोप-देश-वासियों के अनुसार लिखी गई औषधि की मात्राओं से कुछ कम मात्रा में औषधियों का प्रयोग करना चाहिए । पर वो मनुष्य जो जनसाधारण से अधिक निर्बल होंगे या अधिक सबल होंगे उन्हें साधारण भारतीय मात्रा से कम या अधिक मात्रा औषधि की देनी आवश्यक होगी । हो सका तो फिरंग के मिश्रित इलाज में (संखिया बिस्मथ, आयोडीन और गन्धक को मिला कर किए गए इलाज में) मात्राओं का एक भारतीय-स्केल भी किसी अनुभवी प्रसिद्ध भारतीय-चिकित्सक की सम्मति के अनुसार दे दिया जायगा।

पारद Mercury.

आयुर्वेद में इसे बहुत पुरातन समय से प्रयुक्त करते चले आए हैं। इसे अब भी प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु पाश्चात्यायुर्वेद (Allopathy) में फिरंग की चिकित्सा में सोमल और बिस्मथ इस से बाजी मार गए हैं और इसका नम्बर तीसरे पर है।

इसके विषय में Hale and White के Materia medica में निम्न वाक्य लिखे हुए हैं।—

Syphilis—Mercury in any form is powerfully anti-syphilitic. The perchloride is often used for adults, (Liquor hydrargyri perchlor एक B. P. preparation है। इस में perchloride की strength ०·१ प्रति शतक है और इसकी मात्रा ३० से ६० बूंदें है—स्व-लिखित) and Grey powder for children. This action is so important that it makes mercury one of the most valuable drugs we have. It has been mentioned that it may be applied locally to syphilitic ulcerations, but to be of use it is essential that it should also be administered so as to reach the blood. It is probably efficatious by enabling the patient to form bodies poisonous to the spirochœta pallida, the cause of syphilis; its use must be long continued, but should never be pushed to salivation. Mercury is usually administered by intra-muscular injection as Injectio Hydrargyri (10 minims weekly) (ये एक B. P. preparation है इस में पारा, wool fat, कपूर, creosote और जैतून का तेल होते हैं; strength १ ग्रेन पारद १० बूंदों में होता है—स्व-लिखित) Treatment should be begun as early as possible. It is specially valuable in the

primary and secondary stages; also it is of great value in tertiary syphilis. It is as efficacious in the congenital as for the acquired disease. Patients with disease of the kidney do not bear it well.

नोट्—Grey powder का दूसरा नाम Hydrargyrum cum creta है। इस में Mercury और चाक एक और दो के अनुपात में मिलाए हुए होते हैं। इसकी मात्रा १ से ५ ग्रेन है।

पारद—को ७ प्रकार से दे सकते हैं—(१) मुख द्वारा।

(२) फोड़ों पर धूड़ कर या लोशनों द्वारा त्वचा को धोकर (Endermically)।

(३) मालिश द्वारा, मलहम की मालिशों द्वारा।

(४) मांसपेशी-सूची वेध द्वारा।

(५) शिरा-सूची वेध द्वारा।

(६) धूम्र द्वारा— (Fumigation), पुराने समय में बहुत किया जाता था। जर्मनी की बेयर (Bayer) कम्पनी की बनाई हुई Syphilis नाम की फ़िल्म में ये प्रकार अच्छी तरह दिखाया गया है। अब इसे नहीं प्रयुक्त करते हैं।

(७) श्वास द्वारा—प्रयुक्त नहीं होता है।

आजकल पारद पहिली, तीसरा, चौथा और पाँचवीं विधियों द्वारा ही दिया जाता है।

मुखद्वारा—रोग की प्रारम्भिक अवस्थाओं में मुखद्वारा पारद को नहीं देते हैं, क्योंकि इस इलाज से कोई लाभ-विशेष नहीं होता है। एक बार रोग का सोमल, बिस्मथ और आयोडीन

से इलाज कर चुकने के बाद यदि फिर भी थोड़े बहुत रोग के इलाज को जारी रक्खे रखने की जरूरत हो तो मुखद्वारा Grey powder को २ ग्रेन की मात्राओं में देते हैं।

मालिशों द्वारा—पारद का बहुत प्रयोग होता है। इसमें दो कठिनाइयाँ हैं। एक तो इसके लिए सिद्धहस्त मालेश करने वाले के पास जाना पड़ता है जिसकी फीसें देनी पड़ें तो ये तरीका बहुत मंहगा पड़ता है। दूसरे इसमें रोगी का राज़ खुल जाता है। कइयों को उसकी बीमारी का पता लग जाता है। परन्तु ये इलाज बच्चों और बालकों में विशेष उपयोगी है। उन टेबीज़ डॉर्सेलिस के रोगियों में भी जिनकी बीमारी पर सोमल और बिस्मथ का कोई प्रभाव नहीं हुआ होता, ये इलाज विशेष लाभप्रद होता है।

बच्चों में, मलहम को फलालैन के कपड़े पर फैला दिया जाता है और जहाँ पर आवश्यक हो पट्टी की तरह बांध दिया जाता है। मलहम की मात्रा और पट्टी की तरह बांधने की संख्यायें दो बातों पर निर्भर हैं। एक तो यह कि शिशु को कितनी मात्रा दवाई की मलनी अभीष्ट है। दूसरी यह कि रोगी इस दवाई के लिए असहिष्णु तो नहीं है। बच्चों में एक मटर के दाने के बराबर मलहम का मलना काफ़ी होता है। ब्रिटिश फार्मेकोपिया की नीली मलहम (Blue ointment) मली जाती है। पारद के Oleate वाली मलहम का भी उपयोग मालिश के लिए किया जाता है। नीली मलहम की मात्रा जवानों में ६० ग्रेन अर्थात् एक ड्राम है। पर ऊपर बताया जा चुका है कि बच्चों में एक मटर के दाने बराबर काफ़ी होती है। फिर

ये मात्रा बच्चे की आयु आदि पर भी निर्भर होती है।

बच्चों में हर दूसरे दिन रात को मालिश करनी चाहिए। एक दिन धड़ के सामने पेट पर की जाय तो अगली वार दाईं बांह पर करनी चाहिए। अगली वार दाहिनी टांग पर, अगली वार बाईं बांह पर, अगली वार बाईं टांग पर, अगली वार धड़ के एक ओर ज़रा पीठ की तरफ़, अगली वार धड़ के दूसरी ओर ज़रा पीठ की तरफ़, इस तरह १५ दिनों में (अर्थात् पक्ष में) एक जगह की वारी एक वार आती है।

कौनसी जगहें मालिश के लिए अधिक अच्छी हैं ?

(१) पेट (Abdomen) का सामने का भाग।

(२) जाँघों के अन्दर का भाग (Internal side of thighs).

(३) पिण्डलियाँ। (४) बाहें (Arms)। (५) पीठ।

कब मालिशें बन्द कर देनी चाहिएँ ? जब लाला स्राव के या असहिष्णुता के लक्षण (जिनका वर्णन कि परिशिष्ट में किया गया है) प्रगट हों तो तत्काल बन्द कर देना चाहिए। और कुछ दिन तक इस प्रक्रिया को छोड़ देना चाहिए।

युवा पुरुषों में ये प्रक्रिया ५० दिन तक की जाती है और फ़िर विश्राम दिया जाता है।

मालिश १५-२० मिनिट तक की जाती है। गन्धक के पानी के गिलासों को पीना इलाज के साथ जारी रक्खा जाता है। इसके अतिरिक्त गन्धक के पानी से स्नान कराना भी इस इलाज में हितकर होता है।

मांस-पेशी-सूचीवेध द्वारा भी पारद से इलाज किया जाता

है। इस सूची-वेध का तरीका बिस्मथ के मांसपेशी सूचीवेध की तरह ही है। और बिस्मथ के प्रकरण में दिया जायगा। हफ़्ते में Injectio mercury (B. P.) की १० बूंदें दी जाती हैं। इसमें ये फ़ायदा है कि रोगी को केवल कुछ मिनटों के लिए ही चिकित्सक के पास आना पड़ता है और उसके रहस्य का भी भेद नहीं होता है।

शिरा सूचीवेध—पारद के शिरा-सूचीवेध के लिये पार्क डेविस एण्ड को का Mercurosal प्रयुक्त किया जाता है। जहाँ पर रोगी सोमल के लिए असहिष्णु हो और बिस्मथ के प्रयोग मांसपेशी सूचीवेध द्वारा दिए जा रहे हों और इसलिए ये सूचीवेध भी अभीष्ट न हो; और रोगी मालिश भी न करा सकता हो (चाहे ख़र्च के ख़्याल से या किसी और ख़्याल से) तो Mercurosal के शिरा-सूची-वेध किए जाते हैं। मात्रा ०'१ ग्राम है। ५ (5 c. c.) क्यूबिक सण्टीमीटर शुद्ध और कृमि-रहित जल में घोलकर देना चाहिए। हर तीसरे दिन सूचीवेध किया जाता है। और शिरा-सूचीवेध करने का तरीका वही है जैसा कि सोमल के समासों का है; जिसका वर्णन कि सोमल के समासों के साथ किया जायगा।

सोमल के समास

सोमल के दो प्रकार के समास होते हैं। एक तो ऐन्द्रियक और दूसरे अनैन्द्रियक (Inorganic)। आजकल सिफलिस के इलाज के लिए ऐन्द्रियक समासों का उपयोग किया जाता है। पुराने समय से एलोपैथी में अनैन्द्रियक समासों का उपयोग होता चला आया है। पहिले पहल Atoxyl नामी ऐन्द्रियक

समास का उपयोग हुआ था। इसमें सोमल के पाँच बलांश (Valencies) होते हैं। Paul Ehrlich, जिसने कि इस विषय में बड़ी गवेषणा की है, ये पता लगाया कि सोमल के तीन बलांशों वाले ऐन्द्रियक समास मानवीय देह के लिए कम विषैले हैं और अपेक्षाकृत रोग के जीवाणुओं के लिए (जीवाणुओं के लिए ही नहीं अपितु कुछ Protozoa के लिये) अधिक विषैले हैं। उसने अपने जीवन का एक बड़ा भाग इसी गवेषणा में लगा दिया। पहिले उसने ६०६ सोमल के भिन्न २ समास बनाने पर Arsenobenzol या Salvarsan निकाला, जो कि पहिले मालूम हुई २ सब फिरंग की औषधियों में सब से उत्तम सिद्ध हुआ। इसके बाद ९१४ समासों के बनने पर एक और समास निकला जो कि Salvarsan से अधिक लाभ कर सिद्ध हुआ। इसका नाम Neosalvarsan है। Neo से मतलब 'नव' के हैं। इस Neosalvarsan को कई कम्पनियाँ तैयार करती हैं और इसलिए इसके कई भिन्न २ नाम हैं। इसका वज्ञानिक नाम Neoarsphenamine है। कोई कम्पनी इसे Neosalvarsan के नाम से तैयार करती है, कोई Novarsenobillon के नाम से तो और कोई Neokharsivan के नाम से। चीज़ सब में एक ही है तैयार करने वाली कम्पनियाँ भिन्न २ हैं।

ये एक पीला सा पदार्थ है। बन्द शीशे की नलियों में बन्द हुआ हुआ मिलता है। क्योंकि इस पर ओषजन की क्रिया हो जाती है और उसकी क्रिया होने से इसका एक विषैला समास बन जाता है; सो इस कारण ये एक क्रिया रहित गैस

के साथ बन्द किया जाता है। इसे पानी में घोलने पर ये एक दम घुल जाता है, और इसका उदासीन घोल बनता है। (Salvarsan धीरे २ घुलती थी और घुल कर अम्लीय घोल बनाती थी जो शरीर में जाकर Irritation करता था)। Neosalvarsan के घोलने के लिये ठण्डा पानी प्रयुक्त करना चाहिए। गरम पानी में ये विश्लिष्ट हो जाती है। १·५ ग्राम Neosalvarsan का, १ ग्राम Salvarsan के बराबर होता है और इसमें २०% सोमल होता है।

मात्रा के विषय में जो कुछ पहिले कहा जा चुका है स्मरण रखना चाहिए। ९-१० स्टोन या इस से अधिक भारी पुरुष के लिये प्रारम्भ की मात्रा ·४५ ग्राम (·45 gram) है और अधिक से अधिक ·९ ग्राम (·9 gram) है। परन्तु मेरी सम्मति में भारतवर्ष में इस से कुछ कम मात्रा देनी चाहिए। इस मात्रा को गिनने के लिये ०·०५ ग्राम को प्रत्येक स्टोन की मात्रा समझकर जितने स्टोन (एक स्टोन १४ पाउण्ड का होता है और करीबन २ पाउण्ड का एक सेर होता है। सो १ स्टोन करीबन ७ सेर का होता है।) भार हो उससे गुणा करना चाहिए, और इस प्रकार उपलब्ध संख्या को उस पुरुष के लिए प्रारम्भिक उचित मात्रा समझनी चाहिए। परन्तु मेरी सम्मति में भारतवर्ष में इस प्रकार प्राप्त प्रारम्भिक मात्रा से भी कुछ कम मात्रा प्रारम्भिक मात्रा समझनी चाहिए। उदाहरणार्थ ·४५ ग्राम की जगह ·३ ग्राम प्रारम्भिक मात्रा समझनी चाहिए। और प्रारम्भिक मात्रा से द्विगुणित मात्रा अधिकाधिक मात्रा समझी जाती है।

इस औषधि को शिरावेध से देते हैं—

शिरावेध द्वारा देने की विधि लिखने से पहिले Hale & White ने अपने Materia medica में इन समासों के विषय में जो कुछ लिखा है उसे उद्धृत कर दिया जाता है :—

A syphilitic chancre, a secondary syphilide or ulceration, or a tertiary gumma or ulceration, generally improves extra-ordinarily rapidly after a dose of any of these drugs. They are of use in congenital or acquired syphilis; they can not restore structures already destroyed, but will prevent the progress of the syphilis. Their use causes the spirochœtes to disappear, and the Wassermann reaction usually becomes negative. They probably act after being changed in the body by altering the tissues of the patient chemically so that they are able to kill the spirochœtes. Sometimes transient pyrexia follows; very rarely severe even fatal conditions occur later. Such as encephalitis hœmorrhagica, hæmorrhagic nephritis, dermatitis and jaundice. After a usual dose arsenic may be found in the urine up to the eighth day. If there is serious disease other than syphilis,

and specially if of the kidneys, these drugs should either be witheld or given carefully in small doses. If syphilis be treated in the first stage, complete cure is probable. Once general invasion has taken place this result is far less certain, whilst in tertiary and nervous syphilis cure can not be expected, although considerable amelioration of symptoms may be brought about. Usually six to eight arsenical doses are given at intervals of a week; some give weekly intra-muscular injections of mercury or bismuth at the same time, others do not begin the mercury till the completion of the first arsenical course, which is, after a rest, repeated more than once for a shorter time and arsenic and mercury are thus given for a year or even two or three years.

शिरा सूचीवेध की विधि—

उपकरण—१० c. c. (१० क्यूबिक सैंटीमीटर) की एक पिचकारी। इस पिचकारी को स्पिरिट में रखना चाहिए और इस्तेमाल करने से पहिले ताजे उबले हुये पानी से धो लेना चाहिए। सूची के अन्दर तार को डाले हुए उबाल लेना चाहिए। दो सूइयाँ तैयार करनी चाहिएँ और इसके इलावा एक चीनी

की छोटी प्याली को भी उबाल लेना चाहिए।

बीमार को तैयार करना—बीमार को चाहिए कि वो पहिले एक अनुलोमक (Laxative) गोली खाले। और सूची-वेध के समय से ३ घंटा पहिले तक कुछ न खाए हुए हो। जिस वक्त सूचीवेध करना हो उस वक्त रोगी को बिठा लेते हैं या लिटा लेते हैं। रोगी चाहे इन दोनों अवस्थाओं में से किसी भी अवस्था में हो पर उसकी बांह को अच्छी तरह गद्दी पर सहारा दे कर टिकाए रखना चाहिए। सूची वेध के समय बांह बिलकुल न हिले।

सूची वेध प्रकोष्ट के (Forearm) सामने की शिराओं में दिया जाता है या कोहनी के सामने की शिराओं में दिया जाता है। बच्चों में कनपटी की शिराओं में देते हैं। नवजात बच्चों में अगर देना अभीष्ट हो तो Superior sagittal sinus में (कपालान्तर्वर्ती ऊपर की मध्यशिरा में) देते हैं। सूची वेध की जगह पर पहिले स्पिरिट मलकर साफ कर लेते हैं; और सूचीवेध के बाद उस जगह पर टिंचर आयोडीन लगा देते हैं।

जीवाणुरहित की, नई चीनी की प्याली में जीवाणुरहित किया हुआ थोड़ा सा शुद्धजल डाल देना चाहिए। दवाई की ट्यूब को रेती से तोड़ कर इस शुद्धजल में न्यूओसालवर्सन डालदेनी चाहिए। प्रत्येक १ ग्राम न्यूओसालवर्सन के लिए १ सीसी (क्यूबिक सैंटी मीटर) पानी होना चाहिए न्यूओ-सालवर्सन को इस पानी में घोल कर पिचकारी में भर लेना चाहिए। और जिस सूई को लगा कर पिचकारी भरी गई हो

उसे उतार कर अलग रख देना चाहिए। और एक नई साफ़ और जीवाणु रहित सूई पिचकारी के आगे लगा लेनी चाहिए। सूई का छिद्र साफ होवे। पिचकारी के विषय में ये ध्यान रखना चाहिए कि दूसरी सूई पिचकारी के किनारे पर लगती हो। ऐसी पिचकारी से सूची वेध करना सुगम होता है। सूची की लम्बाई छोटी होनी चाहिए। बहुत छोटी भी न हो। मोटाई दर्म्याने दर्जे की होनी चाहिये। ये लचकने वाली न हो पर सख्त (Rigid) होनी चाहिए। इसकी अगली नोक जो कि रन्दे की धार की तरह तिरछी होती है (Bevelled), न बहुत ज़्यादा तिरछी होनी चाहिए न बहुत कम। अर्थात् Bevelling दर्म्याने दर्जे का होना चाहिए। अगर बहुत ज़्यादा Bevelling होगा तो सूई की नोक रोगी की त्वचा में जाती हुई मुड़ जाएगी। अगर बहुत कम Bevelling होगा तो नोक के दोनों ओर के पासे त्वचा में जल्दी से नहीं खुभेंगे। (पंजाबी शब्द है।) अब इस पिचकारी में से सब हवा निकाल देनी चाहिए। ध्यान रहे कि हवा का छोटासा भी बुलबुला शिरा में प्रविष्ट होकर Air embolus बन जायगा। और हो सकता है कि मृत्यु का कारण हो। इस लिए पिचकारी और सूई दोनों में से हवा को पिचकारी की पिस्टन ऊपर नीचे करके और अखीर में ऊपर करके निकाल देनी चाहिए। हवा निकालते हुए पिचकारी को इसकी सूई ऊपर करके पकड़ना चाहिए।

सहायक को चाहिए कि रोगी की बाहुओं पर एक रबड़ की रस्सी बांध देवे और रोगी को हाथ की अंगुलियाँ खोलने

और बंद करने को कहे। इससे अगर शिराएँ न उभरें तो रोगी को कोहनी के जोड़ पर भी बाँह को हिलाना चाहिए। इस प्रक्रिया से शिराएँ उभर जाती हैं। एक अच्छी सी शिरा कोहिनी पर या प्रकोष्ट में ढूंढ कर स्पिरिट से मलना चाहिए और फिर चिकित्सक को पिचकारी टेढ़ी करके त्वचा के ऊपर पिचकारी की सूई खुभोनी चाहिए। सूईका Bevelled हिस्सा ऊपर की ओर होवे। सुई खुभाने से पहिले शिरा को स्थिर कर लिया जाता है। चिकित्सक अपने दाँए हाथ में पिचकारी पकड़ता है और बाएँ हाथ के अंगूठे से शिरा को स्थिर करता करता है। सूई खुभोते हुए सूई त्वचा के साथ थोड़ा सा कोण बनाकर रक्खी जाती है। पर नोक के सिवा सूई और किसी जगह पर त्वचा के साथ न लगनी चाहिए। पहिले सूई थाड़ा सा बल लगा कर त्वचा में खुभोई जाती फिर उसके बाद दुबारा थोड़ा सा बल लगा कर शिरा में खुभोई जाती है। ज्यों ही शिरा में सूई जाती है तो पिचकारी में खून आजाता है। यदि खून न आए तो धोरे से पिस्टन को ऊपर की तरफ खैंच कर देखना चाहिए अगर पिस्टन धीरे से ऊपर खचने से न खिंचे तो उसे ज़ोर लगा कर ऊपर नहीं खैंचना चाहिए ऐसा करने से अगर सूई शिरा में अभी प्रविष्ट न हुई २ हो तो सूई के जोड़ों में से केवल वायु ही दाखल हो जाती है। यदि सूई शिरा में न जावे तो इधर उधर सूई खुभो कर इस ख़्याल से कि कहीं चली ही जावे रोगी की बांह को खराब नहीं करना चाहिए। बल्कि आयोडीन का फाया खुभोई हुई जगह पर रख कर सूई को एक दम बाहर खैंच लेना चाहिए ।

यदि सूई शिरा में चली जाये तो पिस्टन को हलका सा दबाने से ही सारा द्रव शिरा में प्रविष्ट हो जाता है। कई चिकित्सक पहिले थोड़ा सा रक्त पिचकारी में खींच कर, फिर द्रव को प्रविष्ट करते हैं। इससे उनका यह ख्याल होता है कि द्रव रक्त के साथ मिल कर प्रविष्ट होगा। इस प्रक्रिया की मुझे तो कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है। ०.१ ग्राम औषधि १ सीसी पानी में घुली हुई काफी हलके घोल में होती है।

जब द्रव अन्दर जारहा हो तो यह देखना चाहिए कि वेध की जगह पर कोई उभार तो नहीं बन रहा है। यदि उभार बन रहा हो तो इसका मतलब यह होता है कि द्रव विद्ध शिरा से लीक हो (चू) कर त्वचाधोवर्ती तन्तुओं में प्रविष्ट हो रहा है या चिकित्सक द्रव को सीधा त्वचाधोवर्ती तन्तुओं में प्रविष्ट कर रहा है। ऐसी अवस्था में सूचीवेध एक दम रोक देना चाहिए। और सूई को पूर्वोक्त बताई विधि के अनुसार बाहर निकाल लेना चाहिए। जब द्रव त्वचाधोवर्ती तन्तुओं में चला जाता है तो रोगी को बड़ी दर्द होती है क्योंकि ये द्रव बड़ा Irritant होता है। और उस जगह पर बांह सूज जाती है। कई बार व्रण भी बन जाता है।

सूचीवेध के पश्चात् पूर्वोक्त विधि के अनुसार सूई को निकाल लेना चाहिए और विद्ध स्थान पर Iodine लगा देनी चाहिए। Collodion के लगाने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती है।

सूचीवेध का द्रव प्रविष्ट करने से पहिले रबड़ के बन्द को खोल देना चाहिए। ताकि रुका हुआ खून दौरा करने लग जावे। ऐसा करने के बाद द्रव स्वयंमेव बहुत हलकी सी तरह पर पिस्टन दबाने से आप से आप अन्दर चला जाता है। न दर्द

होती है और न स्थानिक शोथ होती है। यह स्मरण रहे कि रोग छूत से फैलता है इसलिए चिकित्सक और उसके सहायक दोनों को अपने हाथों की रक्षा भली प्रकार कर लेनी चाहिए। इसके लिए Overall और दस्ताने पहन कर सूचीवेध करना अवश्यक होता है। यदि चिकित्सक को यह निश्चय भी हो कि रोगी संक्रामता की सीमा को पार कर चुका है तो मेरी सम्मति में तब भी उसे सावधान रहना चाहिए।

कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) सूचीवेध करते हुए सूची का प्रवेशभाग (Bevelled हिस्सा) ऊपर की ओरहोना चाहिए।

(२) सूची शिरा की लम्बी दिशा में लगभग समानान्तर ही होनी चाहिये।

(३) सूचीवेध करने से पहिले पिधान (पिस्टन) को ज़रा सा खींच कर यह निश्चय करलेना चाहिए कि सूई शिरा में ही है। खींचने से रक्तका फुवारा सा पिचकारी में आता है।

(४) सूचीवेध करते हुए शिरा में द्रव बहुत धीरे २ प्रविष्ट कराना चाहिए। और प्रविष्ट कराने से पहिले रबड़ की रस्सी खोल लेनी चाहिए।

(५) सूचीवेध करते हुए सुई या रोगी की भुजा नहीं हिलनी चाहिए। बल्कि बिल्कुल स्थिर रहनी चाहिएँ।

(६) न दर्द होनी चाहिए। न वेध के स्थान पर शोफ बननी चाहिए। द्रव प्रविष्ट करते हुए इस शोफ के बनने का बड़ा ख्याल रखना चाहिए। यदि शोफ बनने लगे तो उपरोक्त विधि के अनुसार सुई को तत्काल निकाल लेना चाहिये।

(७) सुई का वेध करने से पहिले बाएँ हाथ के अंगूठे से रोगी की शिरा पर की त्वचा को कुछ खिचाव दे देना चाहिए। इससे सुई चुभोने पर शिरा पर इधर उधर नहीं फिसलती है और स्थिर रहती है।

(८) यदि शिरावेध के बाद रोगी दर्द की शिकायत करे तो उसे गर्म पानी में स्वच्छ रुई निचोड़ २ कर सेक करने के लिए कहना चाहिए।

कई वार कई रोगियों में शिरा का ढूँढ़ना आसान नहीं होता। यदि कुछ मिनट हाथ को गरम पानी में रक्खा जाय तो शिराएँ स्पष्ट हो जाती हैं। कई वार त्वचा के मोटे होने की वजह से शिरा उभरी हुई भी दिखाई नहीं देती है, पर अँगुली से अनुभव करने से इसका (कड़ेपन से) अनुभव भली प्रकार हो जाता है।

यदि कोई रोगी बहुत डरा हुआ हो या उपवास तथा भय के कारण या थकान वगैरह के कारण उसकी शिराएँ पिचकी हुई और खाली होवें और उपरोक्त गरम पानी वाली विधि के बाद उसे लिटाकर ४ वार सूचीवेध का प्रयत्न करने पर भी चिकित्सक सफलप्रयत्न न हो सके तो उस रोगी को १ घंटे बाद कुछ हलका सा नाश्ता कर के और एक गरम, काफी का बड़ा सा प्याला पीकर आने के लिए आदेश करना चाहिए। स्मरण रहे कि इस प्रकार के डरे हुए रोगियों में हमेशा लिटा कर सूचीवेध करना चाहिए।

बिठाकर भी जब सूचीवेध किया जाता है तो रोगी को सुई खुभोने के समय परली तरफ देखने को कह दिया जाता है।

सूचीवेध के बाद थोड़ा सा गरम दूध पिला देना चाहिए। और इसके इलावा दो घंटे तक और कुछ खाने को नहीं देना चाहिए। २१ घंटे तक विश्राम करवाना चाहिए। बिस्तरे पर लिटाने की कोई आवश्यकता नहीं है पर उसे मेहनत नहीं करनी चाहिए। चूँकि दवाई मूत्र और मल द्वारा त्यक्त होती है इस लिए मूत्र को बढ़ाने के वास्ते जौ का पानी काफ़ी मात्रा में पिलाना चाहिए, और कब्ज नहीं होने देनी चाहिए, बल्कि ऐसी ख़ुराक खाने को देनी चाहिए जिससे कि टट्टी खुलकर आती रहे।

बिस्मथ

शीशे की ट्यूब में किए गए परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि बिस्मथ फिरंग के जीवाणुओं को निर्जीव नहीं कर सकता है। परन्तु जब ये मांसपेशी सूचीवेध द्वारा प्रविष्ट किया जाता है तो फिरंग के लक्षणों को दूर कर देता है और वासर-मैन प्रतिक्रिया को ऋण चिन्ह युक्त कर देता है। लेवेडिटी (Levaditi) प्रभृति गवेषकों ने परीक्षणों से यह सिद्ध किया है कि शरीर में मांसपेशी सूचीवेध द्वारा प्रविष्ट कराए जाने पर बिस्मथ शरीर के Cellular extracts (कोष्टजन्य पदार्थों) से मिलकर एक ऐसा पदार्थ बनाता है जो फिरंग के जीवाणुओं को शीघ्र ही नाश कर सकता है। इस नए बने हुए पदार्थ को Bismoxyl (बिस्मोक्सिल) का नाम दिया गया है।

यदि बिस्मथ को मुख से या शिरा-वेध द्वारा दिया जाय तो फिरंग पर कुछ प्रभाव नहीं होता। संभवतः क्योंकि इन तरीकों से प्रविष्ट हुआ २ बिस्मथ Cellular extracts

से नहीं मिल सकता है । इसके तीन प्रयोग इलाज में बर्ते जाते हैं ।

पहिला Bismostab है । ये सूक्ष्म कणों में निक्षिप्त हुई २ बिस्मथ धातु का ही घोल होता है । दूसरा Bisoxyl है। ये धातु का ओषीय-हरिद् (Oxychloride) होता है । तीसरा (Muthanol) है, ये धातु का उदोषिद (Bihydr-oxide) होता है।

इस, बिस्मथ धातु के ऐन्द्रियक समास का एक और भी गुण है कि ये वातिक द्रव (Cerebrospinal fluid) में सोमल और पारद की अपेक्षा बहुत अधिक मात्रा में प्रविष्ट होजाता है। इसी वास्ते इस धातु के मांसपेशी सूचीवेध मस्तिष्कावरण के फिरंगों (Meningeal syphilis) में बहुत उपयोगी हैं ।

इस धातु के प्रयोगों की मात्रा २ सी. सी. है । इन्हें हफ़्ते में दो बार दिया जाता है और कुल १४ सूचीवेध किए जाते हैं। दो तीन महीनों के बाद सूचीवेधों को फिर शुरू किया जाता है । केवल बिस्मथ के ही सूचीवेधों से इस रोग की पूर्ण चिकित्सा हो सकती है कि नहीं; ये अभी नहीं कहा जा सकता है । समय इस बात का उत्तर देगा ।

इस धातु के प्रयोगों के सूचीवेधों में दर्द नहीं होती है । और लोगों में इस के प्रति असहिष्णुता भी बहुत कम पाई जाती है । और जो कभी २ असहिष्णुता के लक्षण किन्हीं रोगियों में प्रगट भी होते हैं, वे बिलकुल मामूली से ही होते हैं और इस धातु के प्रयोगों को कुछ अरसे तक न देने मात्र से जल्दी दूर हो जाते हैं । इनके विषय में परिशिष्ट में लिखा जायगा ।

बिस्मथ के प्रयोगों को मांसपेशी सूचीवेध की विधि—पिचकारी और सूची दोनों को उबाल कर जीवाणुरहित कर लिया जाता है। सूची १½ से २ इञ्च लम्बी होनी चाहिए। इसके बाद एक छोटी सी चीनी की प्याली भी उबाल कर जीवाणु रहित कर लेनी चाहिए।

बिस्मोस्टैब की ट्यूब लेकर रेती से गर्दन रगड़ कर उड़ा देनी चाहिए। याद रहे कि तोड़ने से पहिले ट्यूब को खूब हिला लेना चाहिए। तोड़ने के बाद उसके अन्दर का द्रव उस चीनी की प्याली में उड़ेल देना चाहिए। फिर बगैर सूई लगाए पिचकारी से उस द्रव को पिचकारी के पेट में खींच लेना चाहिए।

रोगी को कहना चाहिए कि वो टांग को थोड़ा सा सिकोड़ कर (पैर को भूमि से ज़रा सा उठा कर) नितम्ब की मांसपेशियों को ढीला करदे। इन ढीली हुई २ मांसपेशियों में सूचीवेध करना चाहिए। अकड़ी हुई मांसपेशियों में सूई के टूट जाने का खतरा होता है। रोगी को चेतावनी दे देनी चाहिए कि वो मांसपेशियों को अकड़ाए नहीं। अब नितम्ब के ऊपर के और बाहर के एक चौथाई हिस्से पर स्पिरिट को रगड़ कर ये हिस्सा साफ़ और जीवाणुरहित कर लेना चाहिए। और सूई को जड़ से पकड़ कर छोटे से झटके से इस चौथाई भाग के मध्य में खुभो देना चाहिए। यह स्मरण रहे कि सूई न तो नितम्बास्थि की पृष्ट से जा कर लगे और न त्वचा के नीचे तक ही जाकर रह जाए। ये यदि नितम्बास्थि की पृष्ट पर जा लगे तो इसे ½ इञ्च बाहर खींच लेना चाहिये। यदि त्वचा के नीचे तक

ही जा कर रह जाए तो और खुभो देना चाहिए। सूई की लम्बाई २ इञ्च होती है। $1\frac{3}{4}$ इञ्च के करीब अन्दर खुभो देनी चाहिए। खुभो कर २, ४ सैकिण्ड इन्तज़ार करनी चाहिए। यदि सूई से खून निकलने लगे तो इसका मतलब है कि सूई किसी रक्तवाहिनी में छिद्र कर गई है। हमें रक्त-वाहिनी में बिस्मथ का सूचीवेध अभीष्ट नहीं होता है, इस लिए सूची खैंच कर किसी और दिशा में खुभोनी चाहिए। और जब खून न आता हो तो सूई की जड़ के साथ बिस्मथ के द्रव से भरी हुई पिचकारी लगा कर पिस्टन दबा कर सूचीवेध कर देना चाहिए। सूचीवेध कर चुकने के बाद पिचकारी को सूई से उतार कर और पिचकारी में थोड़ी सी हवा भर कर और फिर सूई से लगा कर ये भी प्रविष्ट कर देनी चाहिए। इस से सूई में का द्रव भी मांसपेशी में चला जाता है और सूई बाहर निकालते हुए ये द्रव उसके मार्ग में नहीं निकलता है। अब सूई को शीघ्रता से निकाल कर वेध के स्थान पर स्पिरिट लगा देनी चाहिए। ये याद रहे कि यदि बिस्मथ के द्रव का सूचीवेध त्वचा के नीचे के तन्तुओं में (Subcutaneous tissues) में किया जायगा तो ये बहुत Irritation करेगा। मांसपेशी में किया हुआ सूचीवेध लाभ कर भी बहुत होता हैं। दर्द भी बिल्कुल नहीं करता है।

एक दफ़ा एक नितम्ब में सूचीवेध करना चाहिए और दूसरी दफ़ा दूसरे नितम्ब में।

सूचीवेध कर चुकने के बाद स्पिरिट से भीगे हुए कपड़े से विद्ध स्थान को दबा दबा कर थोड़ी सी मालिश सीं कर देनी चाहिए ताकि प्रविष्ट द्रव मांसपेशी के तन्तुओं में थोड़ा

बहुत फैल जावे। एक ही जगह पर न इकट्ठा रहे।

आयोडीन या नैल (Iodine)

आयोडीन निम्न प्रयोगों के रूप में दी जाती है—

(1) Colloidal iodine. (2) Metallic iodine. (3) Iodopin. (४) सोडियम आयोडाइड् (५) अमोनियम आयोडाइड् (६) पोटाशियम आयोडाइड्।

पोटाशियम आयोडाइड् का देना सुगम और किसी भी तरह कम लाभप्रद नहीं है। इसे ५ ग्रेन की मात्राओं से शुरू किया जाता है। ५ ग्रेन आधा पाइण्ट गरम पानी में डाल कर घोल लेते हैं। सुबह और शाम के भोजनों के बीच ५ ग्रेन उपरोक्त प्रकार से तीन बार देना चाहिए। अर्थात् कुल १५ ग्रेन देना चाहिए। इसके बाद इस मात्रा को ३-३ दिन के बाद २½-२½ ग्रेन करके बढ़ाते जाते हैं। आखिर में ३०-३० ग्रेन दिन में ३ बार करके देकर खतम कर देते हैं। मस्तिष्क फिरंग के रोगियों में इससे अधिक मात्रा में भी दिया जाता है। यदि रोगी अचेत हो या इसके देने से आमाशय में उत्तेजना (Irritability) हो जाती हो तो इसे गुदवस्ति (Enema) द्वारा देना चाहिए। इस दवाई की गुदवस्ति देने से पहिले एक साधारण गुदवस्ति देकर आँतों और मलाशय को साफ़ कर लेना चाहिए।

Collosal Iodine को शिरासूची-वेध द्वारा दे सकते हैं। और चिरकालीन जोड़ों की दर्दें भी अगर फिरंग में होवें तो फिर Iodolysin का प्रयोग अधिक अच्छा है।

गन्धक

गन्धक, पारद सोमल और बिस्मथ के प्रभावों को बढ़ाता है। इसे मुखद्वारा गन्धक-वारि के रूप में लेते हैं। त्वचा द्वारा गन्धकस्नानों के रूप में लेते हैं। मांसपेशी सूचीवेध द्वारा Colloidal sulphur के रूप में लेते हैं। और शिरावेध द्वारा सोडियम Thiosulphate के रूप में लेते हैं। मुख द्वारा निक्षिप्त गन्धक को भी Cashets में डालकर दे सकते हैं।

गन्धक का फायदा यह है कि उपरोक्त तीनों दवाइयों के इलाज में, असहिष्णुता द्वारा होने वाले लक्षणों के प्रगट होने में बाधक होता है। और अगर ये लक्षण हो ही जावें तो उन्हें प्रशान्त करता है।

मिश्रित चिकित्सा

फिरंग की आधुनिक काल में हर जगह मिश्रित चिकित्सा ही होती है। अधोलिखित सूची में Wansey Bayly की पुस्तक से उद्धृत करता हूँ। श्रीयुत वान्सेबेली पारद को छोड़कर शेष सब औषधियों की मिश्रित चिकित्सा निम्न प्रकार से करते हैं। (स्मरण रहे कि भारतीयों में मात्राएँ कुछ कम अन्दाज़ से दें।)

दिन	सोमल	बिस्मथ	आयोडीन	गन्धक
	शिरावेध द्वारा Neoarsphenamine compound.	मांसपेशी सूचीवेध द्वारा Bismostab Muthanol. या Bismoxyl	मुख से Pot. Iodide	शिरा-सूचीवेध द्वारा Thiostab
१ प्रथम	०'४५ ग्राम	...	...	...

४चतुर्थ	०·४५ ग्राम	...	...	...
८अष्टम	०·४५ ग्राम	...	...	...
१५	०·६ ग्राम	...	५·० ग्रेन	...
२२	०·६ ग्राम	...	७·५ ग्रेन	...
२६	...	...	१०·० ग्रेन	०·४ ग्राम
३०	०·७५ ग्राम	...	१२·५ ग्रेन	...
३५	...	२·० सी. सी.	१५·० ग्रेन	...
३९	...	२·० सी. सी.	१७·५ ग्रेन	...
४३	...	२·० सी. सी.	२०·० ग्रेन	...
४६	...	२·० सी. सी.	२२·५ ग्रेन	...
५०	...	२·० सी. सी.	२५·० ग्रेन	...
५३	...	२·० सी. सी.	२७·५ ग्रेन	...
५७	...	२·० सी. सी.	३०·० ग्रेन	...
६४	०·६ ग्राम	...	...	...
७१	०·७५ ग्राम	...	...	...
७५	...	...	...	०·६ ग्राम
७८	०·६ ग्राम	...	...	...
८२,८६,९०,९२	...	२·० सी. सी.	...	...
१०२	...	२·० सी. सी.	...	०·६ ग्राम
१०६	...	२·० सी. सी.	...	...

इस १०६ दिन की चिकित्सा को वेली साहब एक कोर्स कहते हैं। इसके बाद वह कहते हैं कि आयोडीन कोर्सों में नहीं देनी चाहिए पर दो कोर्सों के बीच में देनी चाहिए। उनका कहना है कि इस रोग की पूरी चिकित्सा के लिए इन

कोर्सों की संख्या रोगी की अवस्था जिसमें कि वह चिकित्सा कराने के लिए आया है और उसके रक्त की वासरमैन प्रतिक्रिया पर आश्रित है। यदि रोगी रोग की पहिली अवस्था में रक्त के ऋण चिन्हित होने से पहिले ही ३ हफ़्ते के अन्दर आ गया है तो वेलीं साहब की सम्मति में केवल दो कोर्सों के इलाज की ज़रूरत होती है, जिनमें दो महीनों का फ़र्क हो। इस तरह इलाज में सिर्फ़ ६ महीने ही लगते हैं। रोगी जितना बाद आता है पूरे इलाज का समय उतना २ बढ़ता जाता है।

इस रोग के इलाज का विस्तृत ज्ञान करने के लिए किसी Exhaustive किताब को पढ़ना चाहिए।

परिशिष्ट नं० १

मस्तिष्क-द्रव

Cerebrospinal fluid को वातिक-द्रव या मस्तिष्क-द्रव का नाम दिया गया है। फिरंग रोग में, इस द्रव में भी कुछ परिवर्तन पाए जाते हैं। इस परिशिष्ट में इन्हीं परिवर्तनों का वर्णन किया जायगा।

स्वस्थ पुरुष का मस्तिष्कद्रव स्वच्छ और रंगरहित होता है। इस में प्रोटीन की मात्रा औसतन ०·०२ प्रति शतक होती है। शर्करा की मात्रा ०·०८ प्रति शतक होती है। हरिदों की मात्रा ०·७३ से लेकर ०·७५ प्रति शतक तक होती है। सेलों की संख्या १ से ५ प्रति क्यूबिक मिलिमीटर होती है। और ये सेलें Lymphocytes होती हैं। द्रव का दबाव १ बूँद प्रति सैकिण्ड होता है।

सार्वदैहिक पक्षाघात में निम्न परिवर्तन मिलते हैं—प्रोटीन की मात्रा ०·०५ से लेकर ०·१ प्रति शतक तक होती है। ग्लोब्युलिन की परीक्षा करने पर इसकी उपस्थिति सूचित होती है। सेलों की संख्या ४०० प्रति क्यूबिक मिलीमीटर तक पहुंच जाती है। और ये सब सेलें Lymphocytes होती हैं। वासरमैन प्रतिक्रिया ६६ प्रतिशत में धन चिन्ह वाली होती है। कॉलोय्-डल् बैन्ज़ोइन् प्रतिक्रिया पैरेटिक् (आघातीय) होती है।

आघातीय प्रतिक्रिया का सूचन २, २, २, २, २ से होता है। इस प्रतिक्रिया में कॉलोयडल् बेन्ज़ोइन् घोल को वातिकद्रव (मस्तिष्क द्रव) से मिलाते हैं। स्वस्थ पुरुषों में कोई प्रक्षेप नहीं होता है। पर सार्वदैहिक पक्षाघात वाले रोगियों में हो जाता है। वातिक द्रव के पाँच क्रमशः $\frac{१}{१०}$, $\frac{१}{२०}$, $\frac{१}{४०}$, $\frac{१}{८०}$, $\frac{१}{१००}$ के हलके, हलके, घोल तैयार किए जाते हैं। यदि अपूर्ण निक्षेप हो तो एक अंक से सूचित किया जाता है। यदि पूर्ण हो तो दो अंक से। जा $\frac{१}{१०}$ की विरलता का घोल होता है उसकी वातिकद्रव से हुई हुई प्रतिक्रिया को सब से पहिले लिखा जाता है। इसके बाद $\frac{१}{२०}$ की और शेष अङ्क भी इसी क्रम से लिखे जाते हैं। इस प्रकार परिणाम निकालने से ये पता चला है कि सार्वदैहिक पक्षाघात में २, २, २, २, २ चाप (Curve) प्राप्त होती है। इस चाप को सार्वदैहिक चाप के नाम से पुकारा जा सकता है। लैंगे (Lange) महोदय ने भी एक प्रतिक्रियोपयोगी घोल तैयार किया है। इसका नाम कॉलोयडल् स्वर्णघोल है। इसकी प्रतिक्रिया भी सार्वदैहिक पक्षाघात में विशेष प्रकार की होती है।

ऊपर लिख आए हैं कि सार्वदैहिक पक्षाघात में वातिकद्रव की परीक्षा करने पर इस में ग्लोब्युलिन उपस्थित हुई २ मिलती है। इसकी पहिचान नोने-एपल्ट् नामक प्रतिक्रिया से होता है। इस प्रतिक्रिया में वातकद्रव को Saturated अमोनियम गंधित के घोल से मिलाया जाता है। ऐसा करने पर एक भूरा सा छल्ला पड़ जाता है।

यहाँ पर प्रसङ्गवश ये बता दिया जाता है कि जहाँ वातिक-

द्रव की वासरमैन परीक्षा करने पर सार्वदैहिक पक्षाघात की सब अवस्थाओं में (ये परीक्षा) ९९ प्रति शत रोगियों में धन चिन्ह वाली होती है वहाँ उन्हीं रोगियों की रक्त की वासरमैन परीक्षा करने पर प्रारम्भ की, सार्वदैहिक पक्षाघात की अवस्थाओं में केवल ७५ प्रतिशत में धन चिन्ह वाली होती है और उत्तर अवस्थाओं में १०० प्रतिशत धन चिन्ह वाली होती है।

टेबीज़ डौर्सेलिस—प्रोटीन ०·०३ से लेकर ०·०८ प्रति शत तक होती है। ग्लोब्युलिन उपस्थित होती है। सेलें १० से लेकर ८० तक प्रति क्यूबिक मिलीमीटर होती हैं या इनसे कुछ अधिक और ये सब सेलें Lymphocytes होती हैं। वातिक-द्रव की वासरमैन परीक्षा ७० प्रतिशतक में धन चिन्ह वाली होती है। यहाँ प्रसङ्गवश ये भी बता दिया जाता है कि रक्त की वासरमैन परीक्षा करने पर यह ७०% में ही धन चिन्ह वाली होती है। बेन्ज़ोइन चाप ल्यूएटिक होती है। ल्यूएटिक से ये मतलब है कि १, १, २, २, १ होती है। इसी प्रकार कॉलो-य्डल् स्वर्ण-प्रतिक्रिया भी ल्यूएटिक होती है।

मैनिङ्गो-वैस्क्युलर् फिरंग अर्थात् सुषुम्ना-फिरंग एवं मस्तिष्क-फिरंग इन दोनों में होने वाले वातिक द्रव के परिवर्तन—प्रोटीन ०·०३ से लेकर ०·०८ तक प्रतिशतक होती है। ग्लोब्यु-लिन उपस्थित होती है। सेलों की संख्या १० से ८० प्रति क्यूबिक मिलीमीटर होती है। सब Lymphocytes होते हैं। वातिकद्रव की वासरमैन परीक्षा ५० प्रतिशत में धन चिन्ह वाली होती है। और प्रसङ्गवश ये भी बता दिया जाता है कि उन्हीं रोगियों के रक्त की वासरमैन परीक्षा करने पर

८० प्रतिशत में धन चिन्ह वाली होती है।

नं० २

वासरमैन-प्रतिक्रिया

इस पुस्तक में वासरमैन प्रतिक्रिया का नामोल्लेख कई स्थानों पर किया गया है। यहाँ पर इस प्रतिक्रिया पर भी संक्षेप से कुछ प्रकाश डाल देना आवश्यक प्रतीत होता है। पर इस प्रतिक्रिया के आधारभूत सिद्धान्त को समझने से पहिले कुछ बातों का जानना ज़रूरी है। रक्त की विलीनिका प्रतिक्रिया (Hæmolytic reaction) को बिना समझे वासरमैन की प्रतिक्रिया नहीं समझी जा सकती है।

रक्त की विलीनिकी प्रतिक्रिया (Hæmolytic reaction)—हमने यह देखा है कि यदि हम मेड़ के रक्त के प्रक्षालित रक्ताणुओं को लेकर शिरासूचीवेध द्वारा किसी शशक के शरीर में प्रविष्ट कर दें तो कुछ समय बाद उस शशक के रक्त में, मेड़ के रक्ताणुओं को विलीन कर देने की शक्ति आजाती है। यह शक्ति उपरोक्त सूचीवेधों से पूर्व शशक के रक्त में नहीं थी पर बाद में आ जाती है।

परीक्षण—एक शशक के रक्त को लो जिस में कि उपरोक्त प्रकार के मेड़ के रक्ताणुओं का शिरा सूचीवेध हो चुका हो। इस शशक के रक्त का रक्तवारि निकाल लो। अब इस रक्तवारि में मेड़ के रक्ताणुओं को मिलाकर देखो तो कुछ समय बाद ये उसमें घुल जायेंगे या यों कहिए कि विलीन हो जायेंगे। रक्ताणुओं के टूटने से रक्तवारि का रंग गाढ़ा लाल सा हो जायगा। पर

अगर उस शशक के रक्तवारि को गरम कर लिया जाय और फिर उस में घुले हुए भेड़ के रक्ताणु मिलाए जाँय तो वो नहीं टूटते हैं।

इसका निष्कर्ष यह है कि उस शशक के रक्त में कोई ऐसा पदार्थ है जिसकी उपस्थिति उन भेड़ के रक्ताणुओं को विलीन करने में अपेक्ष है। इस पदार्थ को अपेक्ष पदार्थ (Complement) के नाम से पुकारा जा सकता है। और वो पदार्थ जो रक्ताणुओं को तोड़ते हैं प्रतिरोधी (Antibodies) के नाम से पुकारे जासकते हैं। उपरोक्त कथन का यह सारांश हुआ कि भेड़ के रक्ताणुओं को विलीन करने के लिए शशक के रक्त-वारि में प्रतिरोधी और अपेक्ष पदार्थों की जरूरत होती है। इसी प्रकार नाना रोगों के रोगजनक जीवाणुओं के भी प्रतिरोधी पैदा होते हैं। फिरंगरोग के जीवाणु के प्रतिरोधी (Antibodies) भी होते हैं। यदि फिरंगरोग के जीवाणुओं को अपेक्ष की उपस्थिति में फिरंग-जीवाणु के प्रतिरोधियों से मिलाया जाय तो वो फिरंग के जीवाणु विलीन हो जाते हैं। यहाँ पर यह स्मरण रहे कि अपेक्ष (Complement) सब रक्तों में उपस्थित होता है। पर इसे ताप द्वारा नष्ट भी किया जा सकता है। जो प्रतिरोधी को पैदा करे उसे रोधी-जनक कहना चाहिए। रक्त विलीनिकी प्रक्रिया में भेड़ के रक्ताणु रोधी-जनक हैं। फिरंग रोगी में फिरंग के जीवाणु रोधी-जनक होते हैं। इन्हीं ने फिरंग रोगी में प्रति-रोधी पैदा किए हुए होते हैं। ये प्रतिरोधी यदि अपेक्ष की उपस्थिति में रोधी-जनक से मिलाए जाँए तो मिल जाते हैं। और उसे विलीन कर देते हैं।

वासरमैन प्रतिक्रिया में, हम रोधी-जनक पदार्थ फिरंग के जीवाणुओं को नहीं लेते हैं, पर प्राणी हृदय का पिष्ट पेषित अंश लेते हैं। ऐसा माना जाता है कि इस में भी वही पदार्थ होते हैं जो कि फिरंग रोग के जीवाणुओं में; इस लिए वासरमैन की प्रति क्रिया में कोई दोष नहीं आता है । और वो असली रोधीजनक के न होने पर भी विश्वास-योग्य होती है।

तो इस प्रकार प्राप्त रोधीजनक को, संतप्त करके अपेक्ष नष्ट किए हुए रोगी के रक्तवारि से मिला देते हैं । इस प्रकार प्राप्त रोधीजनक और प्रतिरोधियों के मिश्रण में ताज़े तैय्यार किए हुए गिनि पिग (Guinea pig) के रक्तवारि को मिला देते हैं। ताज़े गिनिपिग के रक्तवारि से उपरोक्त मिश्रण को अपेक्ष प्राप्त होता है। अब यदि रोगी वास्तव में फिरंगरोगी होगा तो उसके रक्त में फिरंग जीवाणुओं के प्रतिरोधी उपस्थित होंगे अन्यथा नहीं। कल्पना करो कि रोगी वस्तुतस्तु फिरंग रोग से आक्रान्त हो चुका है और इस लिए उस के रक्त में उपरोक्त प्रतिरोधीं उपस्थित हैं। ऐसी दशा में प्रतिरोधी, अपेक्ष, और रोधी जनक मिल जाएँगे। और अपेक्ष कुछ बाकी न बचेगा । अब उसी संमिश्रण में भेड़ के रक्त के प्रक्षालित रक्ताणु और शशक का संतप्त करके अपेक्ष नष्ट किया हुआ रक्तवारि मिलाओ। चूंकि उपरोक्त मिश्रण में अपेक्ष का अभाव है अतः भेड़ के रक्ताणु शशक के रक्तवारि के होते हुए भी विलीन नहीं होंगे । पर अगर आगत रोगी जिस में फिरंग रोग का पता लगाया जा रहा है, कभी भी फिरंग का शिकार नहीं बना है, तो उसके रक्त-वारि में प्रतिरोधियों का अभाव है। और इस प्रकार प्रतिरोधियों के

अभाव में रोधीजनक अपेक्ष को अछूता रहने देगा। और जब उस मिश्रण में भेड़ के रक्ताणु और शशक का संतप्त करके अपेक्ष नष्ट किया हुआ रक्त-वारि मिलाया जायगा तो उपरोक्त अछूता अपेक्ष काम आयगा और रक्ताणुओं का विलयन कर देगा। इस प्रकार उस मिश्रण का रंग रक्ताणुओं के टूटने के कारण तत्काल लाल हो जायगा। इस लाल रंग को हम स्थूल आँखों से (बग़ैर सूक्ष्मदर्शक की सहायता के) देख सकते हैं। यदि रंग लाल हो जायगा तो वासरमैन ऋण चिन्ह युक्त कहलायगा। और रोगी फिरंग रोग रहित करार दिया जायगा। पर यदि रंग नहीं बना है तो रोगी धन चिन्ह युक्त कहा जायगा। और वह वस्तुतस्तु फिरंग रोगी है, ऐसा समझा जायगा।

यदि रंग बहुत गाढ़ा लाल हुआ हो तो तीन ऋण चिन्हों से सूचित किया जाता है। अगर उस से कम, तो दो ऋण चिन्हों से और यदि और भी कम, तो एक ऋण चिन्ह से। यदि बिलकुल न हो तो तीन धन चिन्हों से यदि ज़रा सा हो या असंदिग्ध हो तो क्रमशः दो धन और एक धन चिन्हों से सूचित किया जाता है। जो रोगी पूरे तौर पर तीन धन या ऋण चिन्ह वाले हों तो उन्हें ही निश्चय पूर्वक फिरंग का रोगी या रोग रहित कहा जा सकता है। इस प्रकार यहाँ पर कुछ शब्दों में वासरमैन प्रतिक्रिया को समझाने का प्रयत्न कियागया है। विस्तृत वर्णन के लिए किसी रोग-जीवाणु-विज्ञान की पुस्तक का स्वाध्याय करना चाहिए। ये वासरमैन प्रतिक्रिया वातिक-द्रव, और रक्त दोनों की की जाती है।

वासरमैन के अतिरिक्त एक फ्लोक्युलेशन परीक्षा भी फिरंग रोग का क्रियाशाला-रोगविनिश्चय करते हुए की जाती है। पर इस का वर्णन यहाँ नहीं किया जायगा।

रक्त और वातिकद्रव कब कब वासरमैन योग या ऋण होते हैं इस का उल्लेख, वातिक-द्रव वाले परिशिष्ट में किया गया है।

नं० ३

सोमलादि औषधियों के प्रति प्रदर्शित रोगियों की असहिष्णुता और उसकी चिकित्सा —

सोमल—१. सूचीवेध के समय और उसके बाद आध घंटे के अन्दर होने वाले, रक्तवाहिनियों के वातिक-शासन सम्बन्धी लक्षण :—

(क) मूर्च्छा—यह दुर्लभ रोगियों में ही देखने को मिलती है। इसका कारण या तो Shock होता है या रोगी की Nervousness। अगर सूचीवेध रोगी के भरे पेट होने पर किया गया हो तो तब भी मूर्च्छा हो जाती है।

मूर्च्छा आने के लक्षण ये हैं कि रोगी उल्टी करता है, बेहोशी छा जाती है और उसकी नाड़ी विलुप्त-प्राय सी हो जाती है। चिकित्सा— रोगी को सीधा लिटा देना चाहिए। उसके कन्धे और सिर नितम्बों से नीचे होवें। यदि लक्षणों में कमी न आए तो कृत्रिम श्वास-प्रश्वास प्रारम्भ करना चाहिए और स्ट्रिक्नीन् के त्वचाधो-सूचीवेध देने चाहिएँ।

यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि रोगियों को सूचीवेध से पहिली रात एक सुख-विरेचक लिया हुआ होना

चाहिए और उन्हें सूचीवेध के लिए खाली पेट आना चाहिए। इन एतियातों से मूर्च्छा का होना असम्भव प्राय हो जाता है।

(ख) Vaso-dilator crisis--१% रोगियों में देखने को मिलता है। मृत्यु स्वरयन्त्रमुख (Glottis) की शोफ से होती है। लक्षण—चेहरे की रक्तिमा (Flushing), चेहरे की रक्तापूरता (Congestion) तथा शोफ, पुतलियों की विस्तृति, नाड़ी की शीघ्रता, श्वासकाठिन्य, और हृदय के सन्मुख प्रदेश में वेदना का अनुभव। चिकित्सा—१००० में १ वाले एड्रेनेलीन के घोल की १० बून्दों का त्वचाधोसूचीवेध कर देना चाहिए। उपरोक्त लक्षण अगर कभी किसी रोगी में पहिले दिए गए किसी सोमल के सूचीवेध पर प्रगट हो चुके हों तो प्रतिषेधात्मक चिकित्सा को दृष्टि में रखते हुए चिकित्सक को उस रोगी में भविष्य में सदा सोमल का कोई भी सूचीवेध देने से तत्काल पूर्व, उपरोक्त एड्रेनेलीन का सूचीवेध अवश्य दे लेना चाहिए।

२. सोमल के सूचीवेध के अनन्तर ६ घंटे की अवधि में प्रगट होने वाले लक्षण—ये लक्षण सोमल के, अन्य विषों की तरह हुए २ असर से उत्पन्न होते हैं।

(क) ज्वर १०४° फा० या इससे भी अधिक हो जाता है। शिर में दर्द होती है, पीठ में भी दर्द होती है, और शरीर कांपता है।

(ख) महास्त्रोतस् सम्बन्धी (Gastrointestinal) लक्षण—वमन, अतिसार, उदरशूल।

(ग) त्वक् सम्बन्धी लक्षण—छिपाकी, त्वक् शोथ (Dermatitis) और दुर्लभ रोगियों में Herpes भी निकल आती है।

चिकित्सा—शरीर के विविध मलपरित्याग के स्रोतों द्वारा मल के परित्याग को उत्तेजित करना चाहिए। आन्त्रों द्वारा विरेचक देकर, वृक्कों द्वारा मूत्रल उपाय करके जैसे जौ के पानी का खूब पिलाना आदि, त्वचा द्वारा स्वेदूय विधियाँ प्रयुक्त करके। रोगी का भोजन दूध होना चाहिए और रोगी शय्यारूढ़ होकर पूर्ण विश्राम करे। निम्न पदार्थ भी चिकित्सार्थ प्रयुक्त किए जाते हैं—

Sodium thiosulphate (Thiostab) शिरा सूचीवेध द्वारा, या Contramine मांसपेशी सूचीवेध द्वारा, या Colloidal iodine (२५ से ५० सी. सी. की मात्रा में) शिरा सूचीवेध द्वारा।

३. केशिकाओं (Capillaries) की अन्तःकला को क्षति पहुँचने से, केशिकाओं में से रक्त या रक्तवारि निकल कर केशिकाओं के चारों ओर के तन्तुओं में इकट्ठा हो जाता है।

(क) मस्तिष्क की केशिकाओं में क्षति होने से, उग्र शिरोपीड़ा होती है, प्रलाप होता है, मृगी रोग के से दौरे आते हैं, मस्तिष्क-मूर्च्छा (Coma) आती है और तदनन्तर मृत्यु भी सम्भव होती है।

चिकित्सा—(i) कटिवेध करके १५ से २० सी. सी. तक वातिकद्रव (सुषुम्ना द्रव) निकाल देना चाहिए।

(ii) शिरा सूचीवेध (Venipuncture), या शिरा-

खण्डीवेध (Venesection) द्वारा रक्त के १५ से २० औंस तक निकाल देने चाहिएँ।

(iii) १००० में १ वाले एड्रेनेलीन के घोल की १० बून्दों का त्वचाधोसूचीवेध करना चाहिए।

(iv) थायोस्टैब के शिरान्तःसूचीवेध भी देते हैं।

(ख) त्वक् सम्बन्धी—पहिले २४ घंटे बाद छिपाकी निकलती है। जो कि साधारण सी होती है। तदनन्तर ३ या ४ दिन के अरसे में सारे शरीर पर खसरे की तरह के स्फोट से निकलते हैं। इसके बाद किन्हीं दुर्लभ रोगियों में अगर कभी प्रगट हो तो उग्र त्वक्शोथ (Ex-foliate dermatitis) निकलती है जो कि घातक सिद्ध होती है।

चिकित्सा—त्वक् शोथ की चिकित्सा बहुत कठिन होती है। गन्धक, तैल आदि के समासों का प्रयोग होता है। इसके लिए लवणजल के स्नान दिए जाते हैं, निशास्ते की पुलिटसें बांधी जाती हैं और इक्थियौल की मलहम का लेप किया जाता है। इसके अतिरिक्त शरीर को सर्दी लगने से बचाना चाहिए।

(ग) कामला (Jaundice) केवल ०·५ प्रति शतक में मिलती है। ये अवरोधी प्रकार की होती है। कभी कभी कामला तीसरे दिन उत्पन्न होती है तब इसे पित्तकेशिकाओं की अन्तःकला की शाथ का परिणाम समझना चाहिए। और कभी २ ये ६ से ८ वें हफ़्ते के बाद होती है तब इसे सोमलजन्य यकृत्-शोथ का परिणाम समझना चाहिए। जब यह ३ सरे दिन उत्पन्न हो तब इसमें एड्रेनेलीन के सूचीवेध हितकर होते हैं। और जब ६ से ८ हफ़्ते, तब थायोस्टैब और तैल।

(घ) वृक्कशोथ और एल्ब्यूमिन-मेह—इसके साथ रक्त-मेह, या मूत्रानुद्भव, मूत्रविषसंचार आदि लक्षण प्रगट होते हैं। मामूली सा एल्ब्यूमिन-मेह तो सोमल के सूचीवेधों से होता ही है जिसकी परवाह नहीं करनी चाहिए। और बहुधा रोगियों को फिरंग जन्य एल्ब्यूमिन-मेह भी होता है जो उल्टा सोमल की चिकित्सा से दूर होता है। पर एक वो भी एल्ब्यूमिन मेह है जो सोमल द्वारा हुई हुई वृक्कशोथ का परिणाम होता है। इस एल्ब्यूमिन-मेह का फिरंग-जन्य और अन्य एल्ब्यूमिन मेहों से बिना किसी कठिनता के भेद किया जा सकता है। फिरंग का एल्ब्यूमिन-मेह सोमल की चिकित्सा से घटता है। पर सोमल के विषमय प्रभाव से उत्पन्न हुआ २ उल्टा सोमल के सूचीवेध के बाद होता है और होता भी बहुत है। ऐसी दशा में कुछ अरसे के लिए सोमल देना बन्द कर दें और पुनः देने से पहिले थायोस्टैब आदि प्रशामक पदार्थों से इस उत्पात को प्रशान्त कर लें।

यहाँ स्मरण रहे कि फिरंग रोगियों में हमेशा एल्ब्यूमिन के लिए मूत्रपरीक्षा प्रायः करते रहनी चाहिए।

(ङ) अक्षि के कञ्जंकूटाइवा की शोथ (Conjunctivitis) —मामूली और सामयिक सी होती है।

४. शिरा-शोथ (Phlébitis)—यदि शिराशोथ हो जाय तो शिरा हाथ की अंगुलियों से टटोलने पर रस्सी की तरह सख्त सी अनुभव होती है। और इस पर स्पर्शाक्षमता भी होती है। शिराशोथ के बाद शोथ के स्थान पर शिराओं में रक्त के थक्के से जम जाते हैं (Thrombosis)। चिकित्सा ये है कि रोगी को

शय्यारूढ़ होना चाहिए। रोगी की बाँह किसी छोटे झूले (Sling) में लटका देनी चाहिए। इसके चारों ओर काफ़ी रूई हो। और इस पर कभी २ सीसक घोल (Lead lotion) का परिषेचन करते रहना चाहिए। कई बार बाँह को बहुत हिलाने जुलाने से बाँह की शिरा में जमा हुआ खून का थका उखड़ कर प्रवाहित हो जाता है। और इस प्रकार गति करता हुआ फुफ्फुस की किसी बड़ी धमनी में अटक कर (Pulmonary Embolism) रोगी की मृत्यु कर देता है।

स्मरण रहे कि इस न्यूओसालवर्सन की चिकित्सा में प्रादुर्भूत उपद्रवों से हुई२ मृत्युओं की संख्या रोगियों में बहुत ही थोड़ी है। न के बराबर है। अतः सर्वथा उपेक्ष्य है। और इस द्वारा की गई फिरंग की चिकित्सा के लाभ को दृष्टि में रखते हुए इसे कदापि फिरंग चिकित्सा से पृथक् नहीं किया जा सकता है।

कई बार ऐसा देखने में आता है कि कई रोगी न्यूओ-सालवर्सन की चिकित्सा से कमज़ोर होने लग जाते हैं। ऐसे रोगियों में तब इस चिकित्सा पर और अधिक अनुरोध नहीं करना चाहिए और अन्य चिकित्सायोग्य द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए।

इसके बिल्कुल विपरीत कई रोगियों में इस न्युओसालवर्सन की चिकित्सा से रोगियों के भार में वृद्धि हो जाती है। उन्हें स्वस्थता का अनुभव उत्तरोत्तर प्रखरता के साथ प्रतीत होने लगता है। कहने का सारांश ये है कि उनके भार की वृद्धि होने लगती है, उनके चेहरे का रङ्ग चमक उठता है, शरीर में बल और स्फूर्ति का अनुभव होता है, इत्यादि।

प्रतिक्रिया-निर्देशक पत्रों का उल्लेखन—चिकित्सकों को किसी रजिस्टर में या कहीं रोगियों के चिकित्सा सम्बन्धी वृत्तान्तों का इतिवृत्त रखना चाहिए। प्रत्येक सूचीवेध के साथ उससे रोगी पर हुए २ असर का ब्यौरा उस इतिवृत्त में होना चाहिए। ये ब्यौरा कार्यव्यग्र चिकित्सक धन ऋण आदि चिन्हों द्वारा भी रख सकते हैं। अर्थात् अगर असहिष्णुता के लक्षण प्रगट हों तो धन चिन्ह यदि नहीं तो ऋण चिन्ह। इसके अतिरिक्त रोगी के भार, साधारण स्वस्थता (General health), आदि का ब्यौरा रखना चाहिए। जो असहिष्णुता के, कोई लक्षण विशेष हों तो उनका भी लेखा होना चाहिए। और यही नहीं इन वृत्तान्तों की सहायता से चिकित्सा करनी चाहिए या यों कहिए कि इनके आधार पर चिकित्सा को आश्रित रहना चाहिए। स्मरण रहे कि किसी रोगी में अगली बड़ी मात्रा तब तक मत दो जब तक कि पहिली छोटी मात्रा बग़ैर लक्षणों वाली न हो चुकी हो।

कभी ऐसा इलाज न करो जिससे किसी खतरे की आशंका हो। मेयो हस्पताल में न्योओसाल्वर्सन ०.३ ग्राम से शुरू करके केवल ०.६ ग्राम तक ही देते हैं। इससे अधिक नहीं।

बिस्मथ—बिस्मथ से चिकित्सा करते हुए अकसर रोगियों के मसूड़ों में एक नीली रेखा दृष्टिगोचर होती है। पर इस रेखा का दृष्टिगोचर होना चिकित्सा रोक देने का विधायक (या सूचक) नहीं है। बिस्मथ को देने से पूर्व रोगी के दाँतों का निरीक्षण कर लेना चाहिए। जिन रोगियों के मसूड़े बड़े खराब हों पूय पड़ी हुई हो उन्हें तब तक बिस्मथ देना ठीक नहीं

होता है जब तक कि वो रोगी किसी दन्त-चिकित्सक के पास जाकर अपने दाँतों का थोड़ा बहुत इलाज न करालें। इसके अतिरिक्त बिस्मथ का इलाज कराते हुए प्रत्येक रोगी को चाहिए कि अपने दाँतों और मुख की सफ़ाई पर ख़ास ख़्याल रक्खे। ऐसा करने से बिस्मथ से पैदा होने वाले मसूड़ों की सोजिश और मुख पाक (मुख के अन्दर छाले छाले से पड़ जाना) सम्बन्धी लक्षण नहीं प्रगट होते हैं।

बिस्मथ के विषैले असर से पैदा होने वाले लक्षण निम्न हैं—

(क) सम्पूर्ण शरीर की रक्तता (Erythema)।

(ख) त्वचा पर छिपाकी का निकलना और कण्डू होना।

(ग) मामूली सा एल्ब्यूमिन-मेह।

(घ) वातिक नाड़ियों के प्रान्तभागों की विषजन्यशोथ। (Toxic peripheral neuritis)

चिकित्सा—द्रवों का यथेच्छ पान। पर मद्य वाले द्रवों का पान न किया जाय। थायोस्टैब का शिरान्तः सूची वेध।

नैल—(नैल चिकित्सा से होने वाले उपद्रव)

(क) ज़ुकाम, आँखों और नाक से पानी का बहना, सिरदर्द, और ललाटास्थि के कोटरों (Air Sinuses) में दर्द का अनुभव।

(ख) त्वक् सम्बन्धी—मुख और पीठ पर झाईं की तरह के स्फोट निकल आते हैं। रक्तता (Erythema), पामा (Eczema), और Herpes.।

(ग) छाती में दर्द, श्वासकाठिन्य, खाँसी, श्वाससंस्थानीय श्लेष्मकला की शोथ।

(घ) महास्रोतस् सम्बन्धी लक्षण—बुभुक्षानाश, अजीर्ण, उदरशूल, अतिसार आदि ।

यदि पोटाशियम आयोडाइड् को पानी से अच्छी तरह हलका करके भोजनान्तरों के बीच पिया जाय तो ये महास्रोतस् सम्बन्धी लक्षण नहीं प्रगट होते हैं ।

(ङ) अत्यन्त मानसिक-शैथिल्य होता है यहाँ तक कि कभी २ तो ये शोकोन्माद (Melancholia) में परिवर्तित होता हुआ सा प्रगट होता है । थोड़ी बहुत मानसिक उदासीनता तो प्रायः होती है ।

चिकित्सार्थ—आयोडाइड् का देना बन्द कर दो और शेष लाक्षणिक उपायों को प्रयोग करो । इस लाक्षणिक चिकित्सा के लिए पाठक मेरी पाश्चात्य-चिकित्सा-सार नामक पुस्तक पढ़ सकते हैं ।

पारद—

(१) मुख में व्रण या छोटे २ शोथयुक्त Patches होते हैं। मसूड़े सूज जाते हैं ।

(२) महास्त्रोतस् के क्षोभ से उत्पन्न होने वाले लक्षण प्रगट होते हैं ।

(३) वृक्कशोथ सम्बन्धी लक्षण पैदा हो जाते हैं ।

(४) शरीर दौर्बल्य, पाण्डु और भारनाश (Loss of weight) आदि लक्षण भी प्रगट होते हैं ।

प्रतिषेधात्मक—Mercurialism के लक्षण प्रगट न हों इस लिए मुख की सफ़ाई रखनी चाहिए । Euthymol से बुरुश करने चाहिएँ, और फटकड़ी, पोटाशियम परमैंगनेट्,

पोटाशियम क्लोरेट आदि पदार्थों के घोलों से कुल्ले करते रहने चाहिएँ।

चिकित्सा—पारद देना रोक दो। रोगी को पूर्ण विश्राम कराओ। लवणीय पदार्थों, जैसे सोडियम गंधित, मेगनेशियम गंधित आदि हैं, के विरेचन दो। हाइड्रोजन परऑक्साइड् के कुल्ले कराओ।

सोडियम विकर्बनित बड़ी २ मात्राओं में देना लाभकर होता है।

स्वेद्य औषधियों एवं उपायों का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए गरम बोतलें लगाएँ। कम्बल ओढ़वाएँ और गरम वायु के स्नान दें। मुख्य औषधियाँ जो उपरोक्त पारद की असहिष्णुता में बर्ती जाती हैं, थायोस्टैब, आयोडीन और कौन्ट्रामीन हैं।

नं० ४

पहिले मेरा विचार इस पुस्तक में आयुर्वेदोक्त फिरंग पर कुछ टीका टिप्पणी करने का नहीं था। और इसके लिए मैंने अपने मन में अलग तुलनात्मक पुस्तकें लिखने की धारणा की हुई है। पर बाद में मेरा ख्याल कुछ न कुछ शब्द लिख देने का ही हो गया है और इस लिए इस परिशिष्ट को लिख कर जोड़ दिया है।

आयुर्वेद में जिसे उपदंश रोग के नाम से पुकारते हैं वो अनेकों लिंग के रोगों का एक सामूहिक नाम है। फ़िरंग या सिफलिस का नाम विशेष नहीं है। फिरंग का निदान जो माधव निदान में मिलता है यहाँ पर उद्धृत किया जाता है। पर यही

निदान भावप्रकाश में भी मिलता है। संभवतः भावमिश्र इसका प्रथम लेखक है, पर पीछे से वैद्यों ने इसे माधव के निदान में भी जोड़ दिया। खैर कुछ भी हो वो निदान इस प्रकार दिया है—

फिरङ्गसंज्ञके देशे बाहुल्येनैष यद्भवेत् ।
तस्मात्फिरंग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः ।
गंधरोगः फिरंगोऽयं जायते देहिनां ध्रुवम् ।
फिरङ्गिनोऽङ्ग संसर्गात् फिरङ्गिण्याः प्रसङ्गतः ।
व्याधिरागन्तुजो ह्येष दोषाणामत्र संक्रमः ।
भवेत्तं लक्षयेत्तेषां लक्षणैर्भिषजां वरः ।
फिरङ्गस्त्रिविधो ज्ञेयो बाह्य आभ्यन्तरस्तथा ।
बहिरन्तर्भवश्चापि तेषां लिङ्गानि च ब्रुवे ।
तत्र बाह्यः फिरंगः स्यात् विस्फोटसदृशाल्परुक् ।
स्फुटितो व्रणवद्वैद्यैः सुखसाध्योऽपि स स्मृतः ।
संधिष्वाभ्यन्तरः सः स्यादुभयोर्लक्षणैर्युतः ।
कष्टदोऽतिचिरस्थायी कष्टसाध्यतमश्चसः ।
कार्श्यं बलक्षयो नासाभंगो वह्नेश्च मंदता ।
अस्थिशोषोऽस्थिवक्रत्वं फिरङ्गोपद्रवा अम ।
बहिर्भवो भवेत्साध्यो नूतनो निरुपद्रवः ।
आभ्यन्तरस्तु कष्टेन साध्यः स्यादयमामयः ।
बहिरन्तर्भवो जीर्णः क्षीणस्योपद्रवैर्युतः ।
बोध्यो व्याधिरसाध्योऽमित्यूचुर्मुनयः पुरा ।

इसमें कहीं २ पाठभेद मिलता है। मुख्य पाठभेद निम्न पंक्तियों का है।

(i) शोफं च जनयेदेष कष्टसाध्यो बुधैःस्मृतः,
कष्टदोऽतिचिरस्थायी कष्टसाध्यतमश्च सः।

किसी पुस्तक में उपरोक्त पहिली पंक्ति का पाठ है ता किसी में दूसरी का।

(ii) सः स्यादुभयोर्लक्षणैर्युतः।
सः स्यादामवात इव व्यथाम्।

इस निदान को पढ़ने से ये रोग बाद का जोड़ा हुआ या लिखा हुआ मालूम होता है। इस विचार का स्वतः प्रमाण निम्न पंक्ति है।

बोध्यो व्याधिरसाध्योऽयमित्यूचुर्मुनयः पुरा।

इस निदान सम्बन्धी विवरण को पढ़ने से हम फिरंग के विषय में निम्न बातों का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

(१) इस बीमारी का नाम फिरंग इस लिए है क्योंकि यह फिरंग नामक देश-विशेष में बहुत पाई जाती है। और इसे गंधरोग भी कहते हैं। पर ये नहीं स्पष्ट किया कि इसे गन्ध-रोग क्यों कहते हैं?

(२) फिरंगरोगी के साथ अंगों का संसर्ग होने से या फिरंगिणा औरत के साथ प्रसंग (संयोग) करने से यह रोग होता है। यह आगन्तुज रोग है। पर बाद में दोषों का संक्रम हो जाता है।

(३) ये फिरंग रोग तीन प्रकार का होता है। बाह्य फिरंग, आभ्यन्तर फिरंग और बहिरन्तर्भव फिरंग।

(४) बाह्य फिरंग—विस्फोटों जैसा और थोड़ी रुग्णता वाला होता है। और इस में व्रणों की तरह के स्फोट भी होते हैं और ये सुख-साध्य होता है।

(५) आभ्यन्तर फिरंग—सन्धियों में होता है।

(६) बहिरन्तर्भव फिरंग—उपरोक्त दोनों प्रकार के लक्षणों वाला होता है। ये कष्ट का देने वाला, अतिचिरस्थायी (बहुत देर रहने वाला) और बड़ा कष्ट साध्य होता है।

(७) फिरंग के निम्न उपद्रव होते हैं—(क) कार्श्य या कृशता (ख) बलक्षय (ग) नासाभंग (घ) वह्निमांद्य (ङ) अस्थि-शोष (च) अस्थि-वक्रता।

(८) साध्यासाध्य (Prognosis)—

(क) बहिर्भव फिरंग, नूतन फिरंग अर्थात् थोड़ी देर का हुआ हुआ और उपद्रवों से रहित फिरंग, साध्य होते हैं।

(ख) आभ्यन्तर फिरंग, जिस में संधियाँ आक्रान्त हुई हुई होती हैं कष्ट साध्य होता है।

(ग) बहिरन्तर्भव फिरंग, जीर्ण अर्थात् चिरकालिक फिरंग, क्षीण-रोगी को हुआ हुआ फिरंग और उपद्रवों वाला फिरंग असाध्य होते हैं।

जहाँ पर कष्टदोऽतिचिरस्थायीत्यादि की जगह शोफं च जनयेदित्यादि पाठ है, वहाँ इसका अर्थ निम्न प्रकार से होगा।

इसमें शोफ भी होती है। और इसे कष्टसाध्य मानना चाहिए।

यद्यपि फिरंग में संधियाँ शोफ युक्त हो सकती हैं। और इस लिए शोफमित्यादि पाठ की संगति भी लग सकती है पर मैं दूसरे पाठ को अधिक अच्छा समझता हूँ। कारण ये है कि शोथमित्यादि पाठ से बहिरन्तर्भव फिरंग कष्ट साध्य भी हुआ और फिर अन्त के श्लोक के अनुसार असाध्य भी हुआ।

पर दूसरे श्लोक के अनुसार बहिरन्तर्भव अत्यन्त कष्टसाध्य ठहरता है और अन्त के श्लोक के अनुसार असाध्य। इसलिए दूसरा पाठ अर्थात् कष्टदोऽतिचिरेत्यादि अधिक संगत है।

मैं यहाँ पर अब और अधिक इस निदान की विवेचना नहीं करूंगा क्योंकि जो सज्जन मेरी इस पुस्तक को पढ़ कर ये आयुर्वेद का निदान पढ़ेंगे उन्हें ये निदान सर्वथा स्पष्ट हो जायगा और वे अपने मनों में इसकी एलोपैथी वाले निदान से भली प्रकार आसानी से ही तुलना भी कर सकेंगे।

सारांश रूप में इतना कह देना पर्याप्त है कि आयुर्वेदोक्त फिरंग का निदान अक्षरशः सर्वथा ठीक है पर आधुनिक ज्ञान के प्रकाश में बहुत ही संक्षिप्त है। और इसलिए किसी वैद्य को अपना ज्ञान इसी तक ही सीमित रखना उचित नहीं। उसे अपनी ज्ञानवृद्धि के लिए इस पुस्तक में दिए एलोपैथी के फिरंग रोग के ज्ञान का भी संचय करना नितान्त आवश्यक है।

आयुर्वेदोक्त फिरंग चिकित्सा - मैंने अपनी 'आयुर्वेदोन्नति कैसे हो ?' पुस्तक में आयुर्वेदोक्त चिकित्सा पर प्रकाश डाला है। उस में यह बताया है कि भारत में आयुर्वेद की चिकित्सा का एक और पहलू भी है। वह यह कि सर्व साधारण भारतीयों के लिए मंहगी पाश्चात्य चिकित्सा का उपयोग करना असम्भव सा है। सो यद्यपि आयुर्वेदीय चिकित्सा के विषय में हम अभी तक किसी दावे से नहीं कह सकते कि ज़रूर फिरंग का पूरा इलाज हो जाता होगा ? क्योंकि हमारे पास Observation लेने को बड़े २ हस्पताल नहीं हैं। पर तो भी अन्य किसी सस्ती और पूर्ण चिकित्सा के अभाव में इसकी उपादेयता किसी

कदर कम नहीं है।

फिरंग चिकित्सा केवल भावप्रकाश में मिलती है। मुख्यत: पारद के योग प्रयुक्त हुए हैं। इसके इलावा साधारण तौर पर व्रण के रोपण और कृमिरहित करने वाले, धावनादि के लिए काढ़ों का उल्लेख है। इस भावप्रकाशोक्त चिकित्सा को नीचे दिया जाता है।

इसमें एक प्रयोग पारद और गन्धक की कज्जली का है। शेष कई योगों में कई द्रव्य रक्त शोधक या रक्त की Quality को Improve करने वाले हैं।

भाव प्रकाशोक्त चिकित्सा

फिरंगसंज्ञकं रोगं रसः कर्पूरसंज्ञकः।
अवश्यं नाशयेदेतदूचुः पूर्वचिकित्सकाः।
लिख्यते रस कर्पूर-प्राशने विधिरुत्तमः।
अनेन विधिना खादेन्मुखे शोथं न विन्दति।
गोधूमचूर्णं सन्नीय विरदूध्यात्सूक्ष्मकूपिकाम्।
तन्मध्ये निःक्षिपेत्सूतं चतुर्गुञ्जामितं भिषक्।
ततस्तु गुटिकां कुर्याद् यथा न दृश्यते बहिः।
सूक्ष्मचूर्णं लवङ्गस्य तां वटीमवधूलयेत्।
दन्तस्पर्शो यथा न स्यात्तथा तामम्भसा गिलेत्।
ताम्बूलं भक्षयेत्पश्चाच्छाकाम्ललवणांस्त्यजेत्।
श्रममातपमध्वानं विशेषात्स्त्रीनिषेवणम्।
पारदष्टङ्कमानः स्यात्खदिरष्टङ्कसम्मितः।
आकारकरभश्चापि ग्राह्यष्टङ्क द्वयोन्मितः।
टङ्कत्रयोन्मितं क्षौद्रं खल्वे सर्वं विनिःक्षिपेत्।

सम्मर्द्य तस्य सर्वस्य कुर्यात् सप्तवटीर्भिषक् ।
स रोगी भक्षयेत्प्रातरेकैकामम्बुना वटीम् ।
वर्जयेदम्ललवणं फिरङ्गस्तस्य नश्यति ।

धूम्र प्रयोग—

पारदः कर्षमात्रः स्यात्तावानेव हि गन्धकः ।
तण्डुलाश्चाक्षमात्राः स्युरेषां कुर्वीत कज्जलीम् ।
तस्याः सप्तवटीः कुर्यात् ताभिर्धूमं प्रयोजयेत् ।
दिनानि सप्त तेन स्यात् फिरङ्गान्तो न संशयः ।
पीतपुष्पबलापत्ररसैष्टङ्कमितं रसम् ।
हस्ताभ्यां मर्दयेत् तावत्यावत् सूतो न दृश्यते ।
ततः संस्वेदयेद्धस्तावेवं वासरसप्तकम् ।
त्यजेल्लवणमम्लं च फिरङ्गस्तस्य नश्यति ।
चूर्णयेन्निम्बपत्राणि पथ्या निम्बाष्टमांशिका ।
धात्री च तावती रात्री निम्बषोडशभागिका ।
शाणमानमिदं चूर्णमश्नीयादम्भसा सह ।
फिरङ्गं नाशयत्येव बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
चोपचीनीभवंचूर्णं शाणमानं समाक्षिकम् ।
फिरङ्गव्याधिनाशाय भक्षयेल्लवणं त्यजेत् ।
लवणं यदि वा त्यक्तुं न शक्नोति यदा जनः ।
सैन्धवं स इह भुञ्जीत मधुरं परमं हितम् ।
पारदः कर्षमात्रः स्यात्तावन्मात्रं तु गन्धकम् ।
तावन्मात्रस्तु खदिरस्तेषां कुर्यात्तु कज्जलीम् ।
रजनीकेशरत्रुट्यो जीरयुग्मं यवानिका ।
चन्दनद्वितयं कृष्णा वांसी मांसी च पत्रकम् ।

अर्द्धकर्षमितं सर्वं चूर्णयित्वा च निक्षिपेत् ।
तत्सर्वं मधुसर्पिर्भ्यां द्विपलाभ्यां पृथक् पृथक् ।
मर्दयेदथ तत्खादेदर्द्धकर्षमितं नरः ।
व्रणः फिरंगरोगोत्थस्तस्यावश्यं विनश्यति ।
अन्योऽपि चिरजातोऽपि प्रशाम्यति महाव्रणः ।
एतद्भक्षयतः शोथो मुखस्यान्तर्न जायते ।
वर्जयेदत्र लवणमेकविंशति वासरान् ।

इसके बाद अब मैं गोपालकृष्ण भट्ट कृत रसेन्द्रसारसंग्रह में दी उपदंश चिकित्सा का थोड़ा सा उल्लेख करता हूँ। इसमें दिए गए भैरव रस को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि ग्रन्थकार फिरंग को लक्ष्य में रखकर फिरंग की चिकित्सा के रूप में भैरव रस का उल्लेख कर रहा था। देखिए ये पंक्तियाँ—

स एव पापरोगस्य पारं याति जितेन्द्रियः ।
पिडका विलयं यान्ति बलं तेजश्च वर्द्धते ।
रुजा च प्रशमं याति ग्रन्थिशोथश्च शाम्यति ।
अस्थ्नां भवति दार्ढ्यञ्च आमवातश्च शाम्यति ।
भैरवेन समाख्यातो रसोऽयं भैरवाख्यकम् ।

अब यहाँ प्रसङ्गवश मैं एक बात का निर्देश कर देता हूँ। वह यह कि आयुर्वेद में लाक्षणिक रूप से रोगों की संज्ञा है। अर्थात् लक्षणों को ही रोग माना गया है। पर फिरंग जैसे रोग में अनेक लक्षण होते हैं। सो इसकी चिकित्सा लिखते हुए ग्रन्थकार ने भैरव रस के उपयोग को बताते हुए फिरंग में होने वाले लक्षणों को गिना दिया है कि यह रस इन सब लक्षण रूप रोगों को दूर करता है। पर जहाँ यह लिखा है कि 'आमवातश्च

श्च शाम्यति' वहाँ समझदार वद्य को समझ लेना चाहिए कि फिरंग रोग में होने वाले आमवात से मतलब है। इससे यह मतलब नहीं कि Rheumatic arthritis, Chronic rheumatic arthritis इत्यादि सब प्रकार के आमवातों में पारे का यह योग देना अभीष्ट है। सो कुशल वैद्य इन बारीकियों को समझ सकता है। शेष विचार के लिए देखो मेरी 'आयुर्वेदोन्नति कैसे हो?' नामक पुस्तक को।

अब यहाँ पर यह लिख देना उचित ही होगा कि उपदंश के लिए या गोपालकृष्ण भट्ट जिसे उपदंश मानता है उस उपदंश के लिए रसमाणिक्य का भी उल्लेख है। सो इस प्रकार यह स्पष्ट ही है कि सोमल, पारद और गन्धक इस रोग के लिए पुरातन समय से प्रयुक्त होते आ रहे हैं। नई चिकित्सा ने बिस्मथ और आयोडीन को भी स्थान दिया है।

सारांश रूप में यह निर्देश कर दिया जाता है कि आयुवद में फिरंग की चिकित्सा करते हुए ५ बातों पर ध्यान रक्खा जाता था। एक तो कृमिहर द्रव्यों के कषायों व क्वाथों से फिरंग के व्रणों एवं स्फोटों का प्रक्षालन या धावन किया जाय। दूसरे व्रणरोपण द्रव्यों के कषायों व मलहमों ;को इस्तेमाल किया जाय। तीसरे रक्तशोधक पदार्थों के योग खाने को दिए जाँय। चौथे पारद सोमल आदि पदार्थों के योग दिए जाँय जिनका प्रभाव कि फिरंग रोग के जीवाणु पर जाकर होता है; या तज्जन्य विषों को शान्त करने में होता है। पाँचवें गन्धक, गेरू प्रभृति ऐसे पदार्थों का प्रयोग किया जाय जो पारदादि की चिकित्सा से होने वाले उपद्रवों को शान्त करने वाले या प्रति-

वेध करने वाले हों। इसके अतिरिक्त साधारण तौर पर बल्य रसायन आदि द्रव्यों को भी फिरंग की चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाले योगों में मिलाया जाता था।

अब रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त कुछ उपदंशोपयोगी योगों को दिया जाता है।

धावनकषायः—

त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन वा।
व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये।
दहेत् कटाहे त्रिफलां समांशां मधुसंयुताम्।
उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम्।
शुद्धसूतं गृहीतव्यं रक्तिकाशतमात्रकम्।
त्रिगुणां शर्करां लौहे निम्बदण्डेन मर्दयेत्।
याममात्रं ततो दद्यात् श्वेतं खदिरचूर्णकम्।
सूततुल्यं ततः कुर्यान्मर्दनात् कज्जलोपमम्।
विंशतिर्वटिका कार्याः स्थाप्या गोधूमचूर्णके।
निःशेषनिःसृता ज्ञात्वा पिड़िकास्ताः कलेवरे।
भैरवं देवमभ्यर्च्य बलिं तस्मै प्रदाय च।
विधाय योगिनीपूजां दुर्गामभ्यर्च्य यत्नतः।
वटिकास्ताः प्रयोक्तव्या भिषजा जानता क्रियाम्।
दिवसत्रितयं दद्यात् तिस्रस्तिस्त्रो विजानता।
चतुर्थी च समारम्भ एकामेकां प्रयोजयेत्।
एवं चतुर्दश दिने नीरोगो जायते नरः।
पथ्यं शर्करया सार्द्धमुष्णान्नं घृतगन्धि च।
कुर्यात्साकाङ्क्षमुत्थानं सकृद्भोजनमिष्यते।

जलपानं जलस्पर्शं कदाचन नैव कारयेत् ।
दुःसहायान्तु तृष्णायामिक्षुदाडिमकादिकम् ।
शौचकार्येऽप्युष्णवारि वाससा प्रोञ्छनं द्रुतम् ।
वातातपाग्निसम्पर्कं दूरतः परिवर्जयेत् ।
मेघागमे वा शीते वा कार्य्यमेतद्विजानता ।
मुखरोगे तु सञ्जाते मुखरोगहरी क्रिया ,
श्रमाध्वभाराध्ययनं स्वप्नालस्यानि वर्जयेत् ।
ताम्बूलं भक्षयेन्नित्यं कर्पूरादि सुवासितम् ।
क्रिया श्लेष्महरी युक्ता वातपित्ताविरोधिनी ।
लवणं वर्जयेदम्लं दिवानिद्रां तथैव च ।
रात्रौ जागरणञ्चैव स्त्रीमुखालोकनं तथा ।
सप्ताहद्वयमुत्क्रम्य स्नानमुष्णाम्बुना चरेत् ।
पथ्यं कुर्याद्धितमितं जाङ्गलानां रसादिभिः ।
व्यायामाद्यं वर्जनीयं यावन्न प्रकृतिर्भवेत् ।
एवं कृतविधानस्तु यः करोत्येतदौषधम् ।
स एव पापरोगस्य पारं याति जितेन्द्रियः ।
पिड़का विलयं यान्ति बलं तेजश्च वर्द्धते ।
रुजा च प्रशमं याति ग्रन्थिशोथश्च शाम्यति ।
अस्थ्नां भवति दार्ढ्यञ्च आमवातश्च शाम्यति ।
भैरवेन समाख्यातो रसोऽयं भैरवाख्यकम् ।
इसी तरह रस शेखर रस है ।

रस माणिक्य

तालकं वंशपत्राख्यं कूष्माण्डसलिले क्षिपेत् ।
सप्तधा वा त्रिधा वाऽपि दध्ना चाम्लेन वा पुनः ।

शोधयित्वा पुनः शुष्कं चूर्णयेत् तण्डुलाकृति ।
ततः शरावके पात्रे स्थापयेत् कुशलो भिषक् ।
बदरीपल्लवोत्थेन कल्केन लेपयेद्भिषक् ।
अरुणाभमधःपात्रं तावज्ज्वाला प्रदीयते ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य माणिक्याभं भवेद् ध्रुवम् ।
तत् रक्तिद्वितयं खादेत् घृतभ्रामरमर्दितम् ।
सम्पूज्य देवदेवेशं कुष्ठरोगाद्विमुच्यते ।
स्फुटितं गलितं यच्च वातरक्तं भगन्दरम् ।
नाडीव्रणं व्रणं दुष्टमुपदंशं विचर्चिकाम् ।
नासास्यसंभवान् रोगान् क्षतान् हन्ति सुदारुणान् ।
पुण्डरीकं च चर्माख्यं विस्फोटं मण्डलं तथा ।

अब उपदंश का आयुर्वेदोक्त निदान दिया जाता है। इस के पढ़ने से यह स्पष्ट है कि इस से उपलक्षण फिरंग का नहीं है। हो सकता है कि फिरंग की किसी अवस्थाविशेष में अस्पष्ट रूप में हो।

हस्ताभिघातान्नखदन्तघातादधावनादत्युपसेवनाद्वा ।
योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने पञ्चोपदंशा विविधोपचारैः।

अब कुछ सोमल के प्रयोग दिए जाते हैं, जो कि उपदंश निवारण के लिए आयुर्वेद में दिए जाते हैं।

सौराष्ट्री गैरिकं तुत्थं पुष्पकासीससैन्धवम् ।
लोध्रं रसाञ्जनञ्चापि हरितालं मनःशिला ।
हरेणुकैलेऽपि तथा समं संहृत्य चूर्णयेत् ।
तच्चूर्णं क्षौद्रसंयुक्तमुपदंशेषु पूजितम् ।
पुटदग्धं कृतं भस्म हरितालं मनः शिला ।

उपदंशविसर्पाणामेतद् हानिकरं परम् ।
मनःशिला च मधुना शमयत्युपदंशमचिरेण ॥

उपरोक्त आयुर्वेदोक्त योगों को किसी फिरंग रोगी में प्रयुक्त करने से पहिले पाठकों को किसी योग्य वैद्य से इनकी मात्रा आदि का उपयोग भली प्रकार सीखा हुआ होना चाहिए या पाठक को किसी उत्तम आयुर्वेदिक संस्था में आयुर्वेद विषय पढ़ा हुआ होना चाहिए ।

पाठकों के लिए यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि मेरी अन्य पुस्तकें भी शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली हैं।

(१) 'एक्सरे' इस में यह बताया गया है कि वैद्य गण एक्सरे फोटुओं को कैसे आसानी के साथ पढ़ सकते हैं। और पढ़ कर रोग विनिश्चय में किस प्रकार मदद लें सकते हैं। इस पुस्तक को पढ़ने से वैद्यों को एक्स रे का सम्पूर्ण आवश्यक ज्ञान बड़ी आसानी से हो सकता है। हिन्दी में एक्सरे की पहली पुस्तक है। भाषा बड़ी सरल और शैली बड़ी मनोज्ञक है मिलने का पता—मैनेजर, झिगन हाउस रावलपिण्डी शहर मूल्य १) मात्र (छप रही है)।

(२) पाश्चत्य चिकित्सा सार—यह भी कुछ महीनों में छप कर तैयार होने वाली है। इस में पाश्चात्य चिकित्सा का सम्पूर्ण सार निकाल कर दे दिया गया है।